पुस्तक-परिचय

दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों से मुक्ति पाने के लिये महामृत्युञ्जय-शिव की आराधना, मन्त्र-जप, यन्त्र-पूजा एवं यन्त्र धारण, कवच एवं स्तोत्र-पाठ तथा उचित औ[illegible] विशेष का हवन बहुत ही सफल माने गये हैं।

प्रस्तुत "महामृत्युञ्जय : साधना एवं सिद्धि" ग्रन्थ इस दिशा में पूर्ण सहायक सिद्ध होगा।

इसके 'परिचय-विभाग' में मृत्युञ्जय शिव के [illegible] स्वरूप, महामृत्युञ्जय-मन्त्र और उसके अ[illegible] महामृ[illegible]ञ्जय-महिमा, विभिन्न उपासकों के प्रामाणिक [illegible] एवं मन्त्र-जप सम्बन्धी सभी आवश्यक अंगों का परिचय दिया गया है।

"प्रयोग-विभाग" में शिवसङ्कल्प, अमृत-[illegible] शारीरिक बलवृद्धि के लिये 'अप्रतिरथ-सूक्त', का निर्देश करते हुए महामृत्युञ्जय के सुलभ और दुर्लभ प्रायः २० से अधिक सिद्ध (वैदिक, तान्त्रिक और पौराणिक) मन्त्रों के प्रयोग विधि-विधान सहित दिये हैं। यन्त्रों की शृंखला में पूजा-यन्त्र और धारण-यन्त्र दोनों ही प्रकार के यन्त्रों का विधिपूर्वक सङ्कलन है। औषध-स्नान, धारण और हवन के अनेक प्रयोग तन्त्र-विभाग के प्रमुख अंग हैं। महामृत्युञ्जय के कवच-पाठ, सिद्ध-स्तोत्र एवं मृत्युञ्जय-सहस्रनाम स्तोत्र इस ग्रन्थ की विशिष्ट उपलब्धि हैं।

अमृत की प्राप्ति के लिये संगृहीत यह अनूठा "पञ्चामृत" आपके लिये प्रत्येक क्षण में सहायक सिद्ध होगा, यह निःसन्देह कहा जा सकता है।
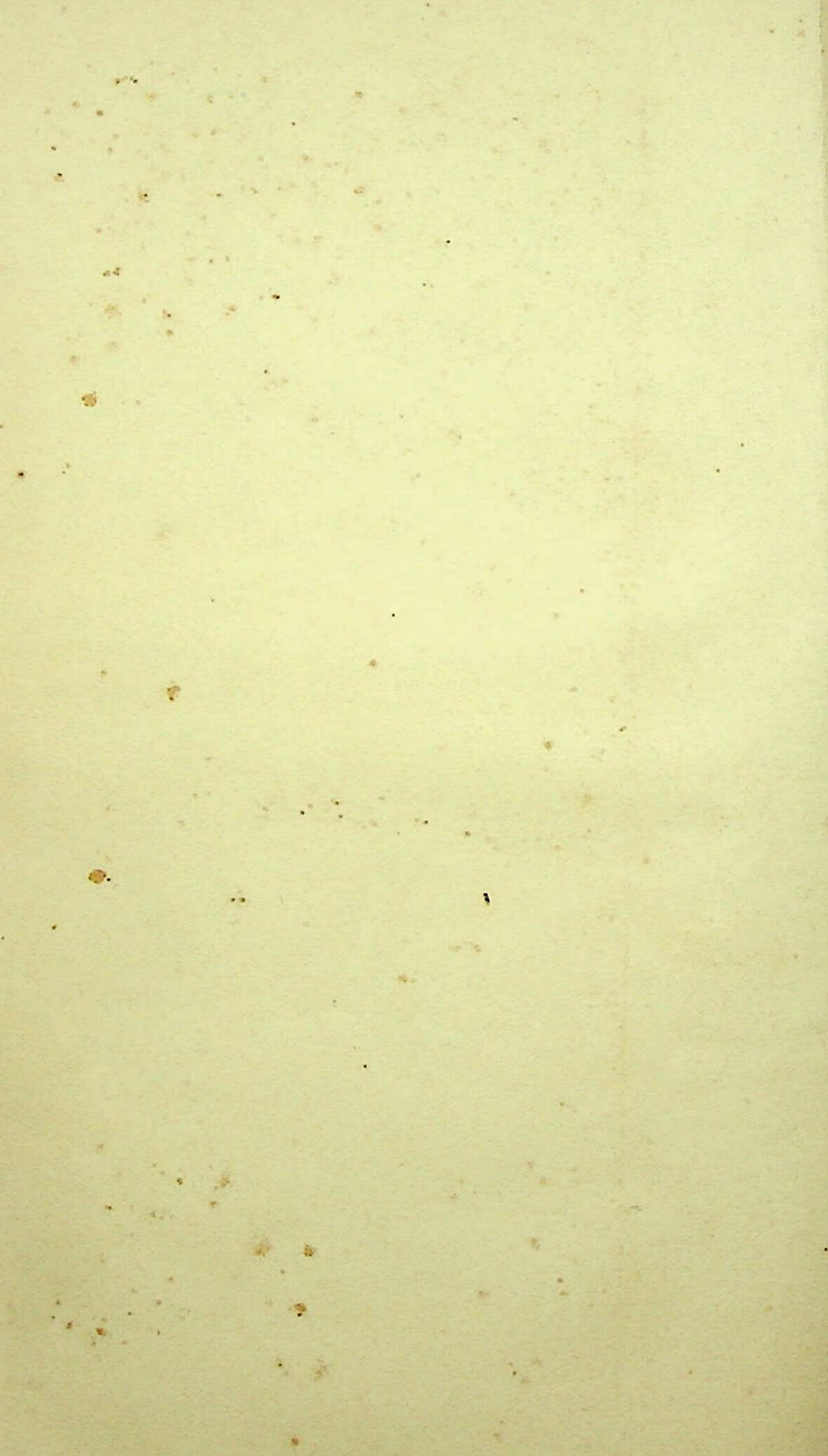
महामृत्युञ्जय
साधना एवं सिद्धि

(मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, कवच एवं स्तोत्रों के प्रयोग-पञ्चामृत से परिपूर्ण)

अपूर्व ग्रन्थ

●

लेखक

डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी साहित्य-सांख्ययोगदर्शनाचार्य

एम० ए० (द्वय), पी-एच०, डी०; डी० लिट्

[मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-स्तोत्र-योग एवं उपासना-ग्रन्थों के प्रसिद्ध लेखक]

रंजन पब्लिकेशन्स

१६, अंसारी रोड, दरियागंज

नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :

रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

फोन नं० : २७ ८८ ३५

प्रथम संस्करण : अगस्त, १९८२

मूल्य : ६०.०० रुपये

मुद्रक : मित्तल प्रिण्टर्स, दिल्ली-११००३२

पुरोवचन

जैसे-जैसे जन मानस में जिज्ञासा जागती है, वैसे ही बोध की दिशा में चरण आगे बढ़ते जाते हैं। आज के युग में जो एक प्रकार की व्याकुलता सभी मानवों में पूर्णतया व्याप्त है, वह है स्वस्थ जीवन की। क्योंकि पग-पग पर फिसलते जीवन में और सब तो जो होना है, होता ही है, किन्तु फिसलकर पुनः खड़े होने की शक्ति यदि नहीं रहे तो जीना ही व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए तो महाकवि कालिदास ने कहा है—**"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** समस्त सांसारिक धर्म-कर्म साधनों का मूल शरीर है। **"जान है तो जहान है"** यह बहुत महत्त्व की बात है।

हम जिन बाहरी उपायों से अपनी सुरक्षा चाहते हैं उनकी स्थिति द्रौपदी के चीर की तरह निरन्तर बढ़ती रहती है। प्रतिदिन हम देखते हैं कि उस व्यक्ति ने अपने रोग का उपचार छोटे-से चिकित्सालय से आरम्भ कर क्रमशः देश के और विदेश के बड़े-से-बड़े हॉस्पिटलों में करवाया। इतना व्यय किया, इतना सब करने पर भी अन्तिम डोर प्रभु के हाथ ही है, आदि।

तब हम सोचते हैं कि जहां अन्त में प्रभु से प्रार्थना करेंगे वहीं प्रारम्भ से ही उसका आश्रय क्यों न लें? और तब इष्टदेव की भक्ति के साथ रोग-मुक्ति, आकस्मिक दुर्घटनाओं से बचाव और अकाल मृत्यु से छुटकारा दिलाने वाले **'अमृतवर्षी महामृत्युञ्जय'** का स्मरण आवश्यक हो जाता है।

जैसे एक रोग की हज़ार दवाइयां होती हैं, उसी प्रकार 'महा-मृत्युञ्जय' की उपासना भी अनेक प्रकार की है। छोटी-बड़ी, लौकिक-शास्त्रीय, साधारण-असाधारण, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, स्तोत्र, कवच आदि। इन सबका एक स्थान पर प्रामाणिक और शास्त्रीय पद्धति से परिपूर्ण सर्वोपयोगी ग्रन्थ आज तक कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। इस कमी की पूर्ति के

लिए एक सशक्त प्रयास **"महामृत्युञ्जय : साधना एवं सिद्धि"** नामक इस ग्रन्थ में समाविष्ट है।

दीर्घ आयुष्य एवं स्थायी आरोग्य प्रत्येक मानव के लिए परमावश्यक है। इसके लिए प्रतिदिन, प्रतिक्षण प्रत्येक व्यक्ति चिन्तित रहता है और विभिन्न साधनों का सहारा लेता रहता है। इसमें पूरा प्रयास किया गया है कि दैवी-कृपा प्राप्त करके हमारा प्रत्येक पाठक स्वस्थ, नीरोग एवं दीर्घायु बने और साथ ही समस्त जीवन को हंसते-हंसाते व्यतीत करे। इसके लिए 'महामृत्युञ्जय' की साधना सर्वोपरि है तथा ऐसी सरल एवं सर्वोपयोगी साधना का द्वार इस ग्रन्थ से निश्चित ही उद्घाटित होगा।

"पाठक रुचिपूर्वक पढ़ें और लाभ उठायें।"
इसी शुभकामना के साथ।

—डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

विषय-सूची

परिचय-विभाग

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण	१०
२.	आदिदेव भगवान् आशुतोष	११
३.	शिव के विविध रूप	१३
४.	मृत्यु की उत्पत्ति और उससे बचने की आवश्यकता	१५
५.	अमृत-प्राप्ति का अधिकार तथा उसके दाता महामृत्युञ्जय	१८
६.	मृत्युञ्जय शिव का शास्त्रोक्त स्वरूप	२०
७.	महामृत्युञ्जय मन्त्र स्वरूप, अर्थ एवं तात्पर्यार्थ	२४
८.	महामृत्युञ्जय-मन्त्र के (अक्षरों) के अर्थ	२८
९.	मन्त्रगत १४ पदों की शक्तियां और देव	३३
१०.	मन्त्रगत ८ वाक्यों के अर्थ	३४
११	प्रकारान्तर से ६ वाक्यों के अर्थ	३५
१२.	मन्त्रगत ४ चरणों के अर्थ	३५
१३.	मन्त्रगत पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध खण्डों के अर्थ	३६
१४.	सम्पूर्ण मन्त्र का तात्पर्य	३६
१५.	मृत्युञ्जय मन्त्र के वर्णों की शक्तियों का जागरण	३६
१६.	महामृत्युञ्जय-मन्त्र के अन्य तान्त्रिक प्रकार	३७
१७.	ध्यान का महत्त्व	३९
१८.	रोगनिवारण के लिए उपासना की आवश्यकता	४०
१९.	शुक्राचार्य जी द्वारा वर्णित **"महामृत्युञ्जय महिमा"**	४२
२०.	महर्षि दधीचि द्वारा महामृत्युञ्जय उपासना	४४
२१.	मन्त्रजाप करने के सामान्य नियम	४६
२२.	उपासना का महत्त्व	४७
२३.	रोग, संकट एवं मृत्यु से बचने के लिए अन्य मन्त्र	४८
२४.	विशेष स्मरणीय	४९
२५.	यह आप स्वयं करें	५०

प्रयोग-विभाग

सिद्ध मन्त्रामृत

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	मनोवलवर्द्धक शिवसंकल्प मन्त्र	५५
२.	आत्मवलवर्द्धक अमृत-सूक्त मन्त्र	५७
३.	शारीरिक पुष्टिकारक अप्रतिरथ सूक्त मन्त्र	५९
४.	संक्षिप्त महा-मृत्युञ्जय शिव-पूजन-पद्धति	६१
५.	विशिष्ट मृत्युञ्जय मन्त्र-प्रयोग	
	(क) त्र्यक्षरी मृत्युञ्जय-मन्त्र प्रयोग	६३
	(ख) मृत्युञ्जय-मन्त्र सम्पुटित व्यास-मन्त्र	६६
	(ग) सिद्ध महामृत्युञ्जय-मन्त्रानुष्ठान-विधि (अनुष्टुम् त्र्यम्बक मन्त्र-विधान तथा श्री त्र्यम्बक पूजायन्त्र) जब प्राण अत्यन्त संकट में हों ! (उस समय के लिए)	६७
	(घ) शलाक्षरा गायत्री मन्त्र-जप विधान	७८
	(ङ) आयुष्यवर्धक अन्य गायत्री-प्रयोग	८०
	(च) सांगोपाग महामृत्युञ्जय-मन्त्र जप विधान	८०
६.	अमृतेश्वरी-मन्त्र प्रयोग	८२
७.	सर्वरोगनाशक धर्मराज-मन्त्र विधान	८३
८.	माला-मन्त्र की प्रयोग विधि	८४
९.	सहस्राक्षर-मृत्युञ्जय-माला-मन्त्र	८५
१०.	महामृत्युञ्जय के नाभ से प्राप्त होने वाले विविध मन्त्रों के स्वरूप (१) एकाक्षरी, (२) अक्षरी, (३) चतुरक्षरी, (४) नवाक्षरी, (५) दशाक्षरी, (६) पञ्चदशाक्षरी, (७) वैदिक ३२ अक्षरी, (८) वैदिक सप्रणव ३३ अक्षरी, (९) केवल मृत्युञ्जय ४८ अक्षरी (१०) मृतसञ्जीवनी ५२ अक्षरात्मक, (११) महा-मृत्युञ्जय (शुक्राराधित ६२ अक्षरात्मक), (१२) शुक्रोपा-सिता मृतसञ्जीवनी विद्या, (१३) अन्य रूप, (१४) बगला के भैरवरूप में मृत्युञ्जय का मन्त्र तथा आम्नाय भेद अन्य मन्त्र, (१५) वेदोक्त दोनों त्र्यम्बक मन्त्र, (१६) अन्य मन्त्रों के साथ मृत्युञ्जय मन्त्र, (१७ से २१) शताक्षरी के	८६-९२

अन्य पांच प्रकार, (२२) अनुष्टुप्त्रय आयुष्कर मृत्युञ्जय-मालामन्त्र, (२३) वृहद् महामृत्युञ्जय - मालामन्त्र, (२४) सहस्राक्षरी, (२५) पौराणिक मृत्युञ्जय मन्त्र, (२६) विलोमाक्षर जयमन्त्र

११. पार्थिव शिवलिंग, पूजा-विधि ९३

१२. यदि आप स्वयं करना चाहें ? ९६

१३. मानसिक शान्ति प्राप्त करने का अचूक उपाय ९७

सिद्ध यन्त्रामृत

सिद्ध मृत्युञ्जय मन्त्र और उनके प्रयोग

१. अग्न्यात्मक महामृत्युञ्जय ऊर्ध्वमुख यन्त्र १००

२. मृतसञ्जीवनी यन्त्र, १०३, ३. महामृत्युञ्जय-पूजन यन्त्र १०४

४. रुद्रपूजन-यन्त्र (८, १६, २४, ३२ तथा ४५ दल एवं शूकर सहित) १०५

५. मृत्युञ्जय शिव-मन्त्र १०६, ६. प्राणरक्षक-मृत्युञ्जय-मन्त्र १०७

७. रणदीक्षा और वीराभिषेक १०८

८. मण्डल मन्त्र तथा वीरासन यन्त्र १०९

९. मृत्युञ्जय-श्रीचक्र-पूजा १११

सिद्ध तन्त्रामृत

सिद्ध मृत्युञ्जय-तन्त्र और उनके प्रयोग (१३ प्रकार) ११२

१. सात वारों के हवन-प्रयोगों का विधान ११३

२. महामृत्युञ्जय अभिषेक (कुछ प्रयोग) ११४

३. सर्वरोग शान्ति के लिये विशिष्ट दान ११७

(१) छायापात्र दान (२) रोग-प्रतिरूप दान, (३) तुलादान आदि। ११८-१९

सिद्ध कवचामृत

कवच-पाठ (परिचय) १२०

१. श्री महादेव प्रोक्ष मृतसञ्जीवनी-कवच (मन्त्र सहित) १२०

२. मृत्युञ्जय-कवच, १२३, ३. महामृत्युञ्जय कवच १२४

सिद्ध, मृत्युञ्जय-स्तोत्र और उनके प्रयोग १२६
१. महामृत्युञ्जय-स्तोत्र १२८
२. मार्कण्डेय-प्रोक्त चन्द्रशेखराष्टक स्तोत्र १३१
३. मार्कण्डेय-प्रोक्त मृत्युशमन-मृत्युञ्जय-स्तोत्र १३४
४. नृसिंह पुराणोक्त विष्णु मृत्युञ्जय-स्तोत्र १३५
५. महर्षि लोमशकृत महामृत्युञ्जय-स्तुति १३६
६. परमायुप्रद उपमन्युकृत शिवस्तोत्र १३९
७. सहस्रनाम स्तोत्र एवं उनकी पाठ-प्रक्रिया १४१
८. श्रीमहामृत्युञ्जय-सहस्रनाम-स्तोत्र १४६
९. योगामृतवर्षी स्तोत्र (परिचय) १५४
१०. रुद्रयामलोक्त मणिपुर-विभेदक रुद्रस्तोत्र १५५
११. मृत्युञ्जय-नीराजनम् १५७
१२. अपराध-क्षमापन-स्तोत्र १५८
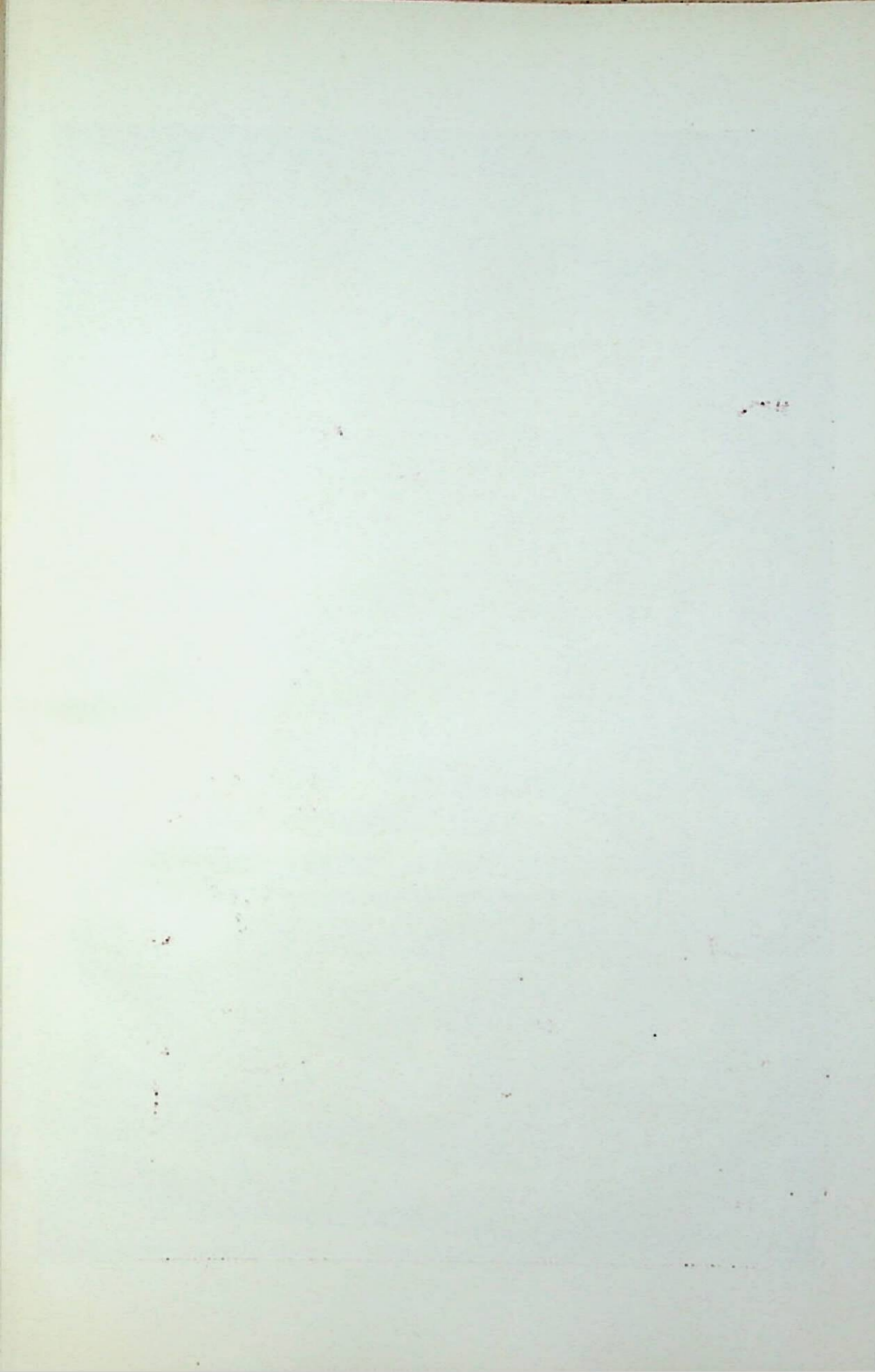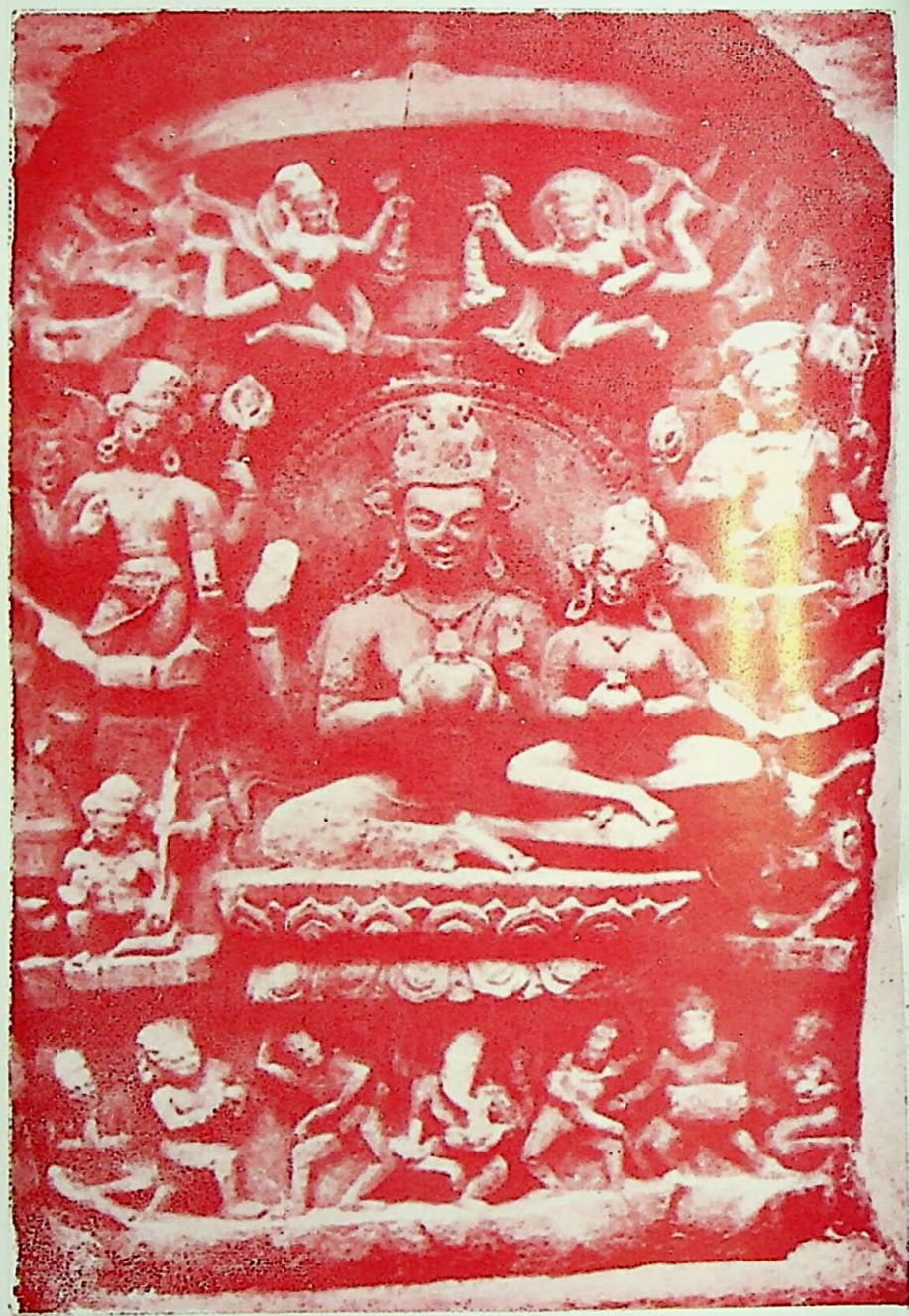
परिचय-विभाग

मङ्गलाचरणम्

सुधासन्दोहोद्यत् -प्रसृमर-मयूखैर्विलसितं,
भवाब्धौ मग्नानां शरणमिह सञ्जीवनकरम् ।
सदा जाड्यान्धानां तिमिरहरणं सौख्यकरणं,
सहस्राराब्जस्थं हृदय ! नम मृत्युञ्जय-गुरुम् ।।१।।

दौर्बल्यं प्राणिनो यत्तमिह हि नितरां पीडयन्ते शरीरे,
रोगास्तेभ्यस्तु मुक्तिं कथमपि स चिकित्सावशाद् हन्त याति ।
मृत्योर्भीतिः परं सा प्रतिपदमुदयत्यान्तरं कृन्तयन्ती,
तस्या हृत्यै कृपालुर्भवतु स भगवान् मृत्युमृत्युर्महेशः ।।२।।

पूर्वाचार्यैः स्वकीये हृदि परकृपया प्राणिनां रोगशान्त्यै,
मृत्योः पाशाद् विमुक्त्यै सुसरलविधिना साधनीयं सुमन्त्रम् ।
श्रीमन्मृत्युञ्जयस्य प्रकटितममलं सर्वसौख्यप्रदं तत्,
सर्वेषां दुःखनाशं कलयतु कुशलं चापि नित्यं तनोतु ।।३।।

देवानामर्चनाया विबुधवरगणैर्दर्शिताः सन्ति मार्गा,
भूयांसो भूमिभागे विविधविधियुताः सारपूर्णाः प्रशस्ताः ।
केचित् क्लिष्टास्तथान्ये सुसरलसरलास्तेषु भक्त्या यथेष्टं,
मार्गं श्रित्वा यतन्ते तदनु च भुवि ते स्वेप्सितं संलभन्ते ।।४।।

मूर्तिर्यन्त्रं शरीरं तृतयमिदमहो साधनालम्बनार्थं,
ख्यातं शास्त्रे क्रमेण श्रयति जनगणः स्थूलसूक्ष्मातिसूक्ष्मम् ।
लाभं लाभं स्वकीयं जननमिह ततः साधयित्वा पराख्यं,
तत्त्वं साक्षात् करोतीत्यभिनवसरणिः श्रीकरी संश्रितव्या ।।४।।

श्रीमन्मृत्युञ्जयस्य प्रणतिरपहरत्यञ्जसा प्राणिनां वै,
रोगान् शोकांश्च मृत्युं, वितरति विततं जीवनं जीवनाय ।
सर्वापद्भ्यश्च रक्षां जगति विदधती सर्वसौख्यानि दत्ते,
सद्यो हृद्यां ततस्तां स्थिरसुखनिधये मानवाः ! संश्रयन्ताम् ।।६।।

रुद्रदेवानन्दनाथ-प्रणीतेयं कृतिः सदा ।
पदयोरस्तु जयिनी श्रीमन्मृत्युजयप्रभोः ।।७।।

—रुद्रदेव त्रिपाठी

आदिदेव भगवान् आशुतोष

मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण, मृत्युसंसारखण्डनम् ।
मृत्योरीश मृत्युबीज, मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते ॥

शिव, शङ्कर, शिवङ्कर

भगवान् शिव की उपासना भारतीय-वाङ्मय में अत्यन्त व्यापक रूप में प्राप्त होती है। आदिदेव के रूप में शिव की प्रतिष्ठा आज से हजारों वर्ष पहले ही हो चुकी थी। जब मानव संसार की अन्य व्यवस्थाओं और सुविधाओं से सर्वथा अबोध था, तव भी '**शिव**' उसके अणु-अणु में ओत-प्रोत था। शिव-कल्याण की कामना न केवल अपने लिए अपितु समस्त चराचर के लिए की जाती थी। 'सभी कर्म और सभी धर्म शिवमय हों' यह सन्देश वेदवाणो का सर्वस्व रहा है। 'शिव-संकल्प'-सूक्त'[1] में मन को तन्मय वनाने की कामना की गई है और सम्भवत: शिव के लिए ही 'शंकर'-शिवंकर को अव्यक्त से व्यक्तरूप में स्वीकार किया गया हो !

शिव के सूर्य, चन्द्र और अग्निरूप तीन नेत्रों के कारण उन्हें '**त्र्यम्बक**' नाम से सम्बोधित किया गया। आस्तिक-समुदाय में अनन्तदेवों की उपासना होती है, किन्तु उन सवमें शिव को सर्वातिशायी माना जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्रमशः सृष्टि, स्थिति और संहार के देवता वतलाये गये हैं तथा इसी आधार पर शिव को संहार का देवता कहकर उनकी स्तुति करते हुए स्वरूप का संकेत किया गया है कि—

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचा: सहचरा—
श्चिताभस्मालेप: स्रगपि नृकरोटी परिकर: ॥ इत्यादि ।

अर्थात् श्मशान भूमि में निवास, पिशाचों का साहचर्य, चिताभस्म का आलेपन तथा मुण्डमाला का धारण, यही सव शिव की सम्पत्ति है।

---

१. यह सूक्त हमने अर्थ सहित पूजा के आरम्भ में दिया है।

परन्तु भक्तगणों ने इन सब के रहते हुए भी उनके वास्तविक तत्त्व को पहचाना तथा उसे अभिव्यक्त करते हुए कहा कि—

अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु, नामैवमखिलं,
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ।।

—महिम्नः स्तोत्र

अर्थात्—हे वरद ! उपर्युक्त श्मशानवासादि प्रक्रिया के कारण आपका शील अमंगलरूप है तो हो, उससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि तुम्हारा अकेला 'नाम' ही स्मरणकर्ताओं के लिए अखिल मंगलकारी है।

इस प्रकार अमंगल होकर भी मंगल करने की शक्ति शिव के अतिरिक्त अन्य किस देव में हो सकती है ?

इस मंगलकारी गुण के साथ ही शिव की एक और विशेषता है—'आशुतोषता'। अपनी मस्ती में मस्त रहने वाले '**भोले बाबा**' भक्तों की छोटी-सी प्रार्थना पर ही प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिए उन्हें 'आशुतोष'-शीघ्र प्रसन्न होनेवाला कहा गया है। जो जैसी भक्ति की शक्ति रखता हो वैसी ही भक्ति करे, शिवजी उसी से प्रसन्न हो जाते हैं। देरी का क्या काम ?

आशुतोष होने के साथ ही शिवजी '**ओघड़दानी**' भी तो हैं। भक्तों के लिए उनका अक्षय-भण्डार सदा खुला रहता है, 'जो चाहिये सो लो, कोई हिसाब नहीं।' इसीलिये तो एक दिन माता पार्वती ने कह ही दिया—

कोई चढ़ावत चारिक चांवल, कोई धतूरे को पुष्प दियो है,
कोई चढ़ावत बेल की पाति, कोई ने हरहर नाम लियो है।
गौरी हँसी मुख आँचल देयकै, देख पिया ठग लोक भयो है,
भोरे से कन्त हमारे इन्हें, दे दे धतूरा धन लूट लियो है।।

और इसी भोलेपन के कारण भगवती जगदम्बा अन्नपूर्णा बनकर भक्तों के यहाँ अन्न-धनादि की वृद्धि करती रहती है।

भगवान् शिव की 'अपरिग्रह-वृत्ति' का परिचय हम उनके दिगम्बर,

कृतिवासस्-चर्मधारी, श्मशानवास, भस्मधारण जैसे अनेक उपकरणों से प्राप्त कर सकते हैं। 'नीलकण्ठ' नाम से संसार के सामने जो उदाहरण प्रस्तुत होता है, उसकी समानता अन्यत्र कहां मिल सकेगी ? देखिये—

समुद्र मन्थन हुआ। चौदह रत्न निकले। सभी अच्छी वस्तुएं देवताओं और असुरों को उनकी इच्छा के अनुसार दे दी गईं। बचा केवल कालकूट-जहर। कौन ले, जहर को ? शिव ने इसे स्वीकार किया और जगत् को शिक्षा दी कि—रे मानव ! घर में जो बड़ा-बूढ़ा होता है, उसे जहर पीने की वृत्ति रखनी चाहिए—सभी की बुराइयां अपने ऊपर लेने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए, तभी परिवार प्रसन्न रह सकता है। यदि 'वाड़' ही खेत को खाने लगे तो कौन लगायेगा वाड़ ?

शिव का यह नीलकण्ठरूप आज के युग में सभी वरिष्ठ अधिकारियों, नेताओं तथा परिवार के वृद्ध सदस्यों के लिये आदरणीय और अनुकरणीय है। अच्छी वस्तुओं का मोह त्यागकर उसे परिवार में वितरित कर सभी को सुखी वनाने का नाम ही 'नीलकण्ठ' बनना है।

सीमित साधन, सामान्य रहन-सहन, सन्तुलित आहार-विहार, सन्तोषवृत्ति, निरभिमानिता, छोटा परिवार, सभी का कल्याण करने की भावना जैसी अनेकानेक बातें भगवान् शिव के नामों से ही हम सीख सकते हैं और आत्मकल्याण के साथ-साथ सारे जगत् का कल्याण करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता है दृष्टि वनाने की…। जब दृष्टि वनेगी तो उसमें प्रवृत्ति होगी और प्रवृत्ति होने पर भगवान् 'आशुतोष' दया करने में विलम्ब करेंगे ही क्यों ?

● शिव के विविध रूप

शास्त्रों में शिव के शिव-स्वरूप के साथ ही उनके **रुद्ररूप** का भी पर्याप्त वर्णन मिलता है। वे समय-समय पर अवतार लेकर देवताओं के संकटों को दूर करने के लिए राक्षसों का संहार भी करते हैं। भगवान् शिव का ताण्डव तो प्रसिद्ध है ही। यह ताण्डवलीला ही संहारलीला की प्रतीक वताई जाती है। रात्रि के आरम्भकाल—प्रदोष समय में यह ताण्डव नृत्य होता है तब सभी देव और गण इसमें सहयोगी वनते हैं।

रावण ने अपने 'शिवताण्डव-स्तोत्र' के प्रथम पद्य में ताण्डव का वर्णन इस प्रकार किया है—

जटाकटाह-सम्भ्रम-भ्रमन्निलिम्प-निर्झरी—
विलोल-वीचिवल्लरी-विराजमानमूर्धनि ।
धगद्धगज्ज्वलल्ललाट - पट्ट - पावके,
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥

यद्यपि इसमें केवल जटा और तृतीय नेत्र का वर्णन ही प्रमुख है तथापि नेत्र से अग्नि की लपटों का निकलना तथा जटा के केशों का बिखर कर घूमना, गंगा की लहरियों का चारों ओर छिटकना और बालचन्द्र की छटा का भी अपूर्व वर्णन है। केवल सिर—जिसमें 'भाल, नेत्र और मुख भी सम्मिलित हैं' का—स्वरूप ही कितना अनूठा है, अग्नि तथा जल का कैसा सामञ्जस्य है ? यह सहृदयगम्य ही है।

इसी के आधार पर शिव का विचित्र रूप निखर आता है और उनके सौम्यस्वरूप के साथ ही उग्ररूप भी स्पष्ट हो जाता है।

हां, तो शिव रुद्र होकर क्रोध करते हैं, उग्र बनकर गजासुर, अन्धकासुर, त्रिपुरासुर, कामदेव आदि का संहार करते हैं, त्रिशूल, खण्डपरशु, खट्वांग आदि उनके अस्त्र हैं और अपनी इसी उग्रता के कारण वे मखान्तक ही नहीं, अपितु अन्तकान्तक—यमराज का भी अन्त करनेवाले बने हुए हैं। यथा—

अगर्वसर्वमङ्गला - कलाकलापमञ्जरी—
रसप्रवाहमाधुरी — विजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं,
गजान्धकान्तकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥

अन्तक-यमराज का दूसरा नाम धर्मराज है। यमराज की नगरी का नाम संयमनी है। वह प्राणिमात्र पर नियन्त्रण रखता है। उसका प्रधान-लेखक चित्रगुप्त प्रत्येक के कर्मों का पूरा लेखा-जोखा रखता है और उसी के आधार पर प्राणियों का कर्मानुसारी योनियों में जन्म-मरण होता है। इस दण्डाधिकारी की दण्डावली में विभिन्न नारकीय-यातनाएं अथवा

स्वर्गादि सुख की सुविधाएं निश्चित हैं जिनके आधार पर प्राणी को इस लोक में और मरणोत्तर काल में विभिन्न कष्टों का सामना करना पड़ता है।

कहा जाता है कि यमराज की मार बड़ी भयानक होती है। मृत्यु-काल के निकट आने पर अपने कर्मों के फलस्वरूप जब यमदूत प्राणी को लेने आते हैं तो बड़े-बड़े शूरवीरों के भी छक्के छूट जाते हैं। सांसारिक सतरंगी छत के नीचे जन्मा, पला और बड़ा हुआ मानव यहीं बस जाना चाहता है। उसका घर-परिवार उसका अभिन्न अंग हो जाता है जिसे वह क्षणभर के लिए भी अपने से अलग नहीं करना चाहता। पर, काल की गति विचित्र है। काल किसी को नहीं छोड़ता। असमय में ही हमसे छीन ले जाता है, सोचे हुए विचार पड़े रह जाते हैं, कराल काल के पास दया का क्या काम ?

किन्तु काल के भी काल **'महाकाल'** यमराज के पाश से छुड़ाने में पूर्ण समर्थ हैं। वे अपने भक्तों को काल के गाल में जाने से बचाते हैं। दुर्गति से बचाकर सुगति प्रदान करते हैं, अल्पायु को दीर्घायु बनाते हैं इतना ही नहीं चिरजीवी—अमर बनाने में भी वे समर्थ हैं फिर छोटी-मोटी बीमारियों से बचाने की तो बात ही क्या ?

उनके ऐसे ही अपूर्व गुणों के कारण उन्हें **'मृत्युञ्जय'** कहा गया है, वे **'अमृतेश्वर'** हैं तथा उनकी अर्धाङ्गिनी जगदम्बा **'अमृतेश्वरी'** हैं। इन दोनों के चरणों में हमारा प्रणाम है।

● मृत्यु की उत्पत्ति और उससे बचने की आवश्यकता

अथर्ववेद के अनुसार परमब्रह्म से ब्रह्म का आविर्भाव हुआ। ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया। जब समस्त लोक प्राणियों की अधिकता से भर गये और श्वास लेने में भी बाधा उपस्थित होने लगी तो ब्रह्माजी के-नेत्रों से प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न हुई और वह प्राणियों को जलाने लगी। ऐसी स्थिति में भगवान् शिव ने ब्रह्माजी से उसके संवरण की प्रार्थना की जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने अपनी क्रोधाग्नि को अन्तरात्मा में लीन कर लिया। उस समय प्रजा के जन्म-मरण की व्यवस्था के लिये 'मृत्यु'

को जन्म दिया। मृत्यु के द्वारा कार्य करने का आदेश मांगने पर समय-समय पर प्राणियों के संहार का आदेश मिला। वह मृत्यु इससे चिन्तित होकर रो पड़ी। उसने आंसू दोनों हाथों में ले लिये। आगे चलकर वे ही रोग बने और जब प्राणियों की मृत्यु निकट आती है तब काम और क्रोध को प्रेरित करके उनके द्वारा मोहान्धकार में डालकर उन्हें वह मार डालती है। उपर्युक्त अश्रु ही मृत्यु का समय निकट आने पर ज्वरादि रोग बन जाते हैं।

'मृत्यु तो एक दिन सबकी होती ही है' क्योंकि—**"जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः"** के अनुसार जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु ध्रुव है। किन्तु मृत्यु यदि असमय में ही आ जाए तो वह किसी को इष्ट नहीं है। प्राचीन काल में ऋषि-मुनि इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त करके अपने जन्म को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। उसका मूल कारण था—ब्रह्मचर्य एवं तप। कहा है—**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत**। अर्थात् देवताओं ने ब्रह्मचर्य और तप से ही मृत्यु को दूर किया था। **'जीवेम शरदः शतम्'** (सौ शरद तक हम जीएं) की कामना के पीछे यही रहस्य था कि मानवजीवन प्राप्त करके रोगादि से ग्रस्त रहने पर इहलोक और परलोक की कोई साधना नहीं की जा सकती। **'स्वस्थ मन और स्वस्थ तन' जीवन के वास्तविक धन हैं।' 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**—धर्म साधन के लिए शरीर पहला साधन है। शरीर नहीं तो धर्म नहीं।

मृत्यु एवं उसके सहयोगी रोगों से बचे रहने के लिए वेदों का साक्षात् आदेश प्राप्त है। अथर्ववेद में कहा है कि—

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके॥

समस्त विश्व संहारक ईश्वर को प्रणाम है। हे मनुष्य ! तेरे प्राण और अपान तेरे शरीर में सुख से चिरकाल तक रहें। तेरा जीवनीय प्रकाशमय सूर्य अमृतमय दीर्घकाल तक विचरता रहे।

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः॥

हे मानव ! तू मृत्यु से ऊपर उठ, अध:पतन की ओर मत जा। इन मृत्युबन्धनों से स्वयं को मुक्त कर। दीर्घजीवन प्राप्त कर और मर्त्यलोक से अपने आपको दूर मत कर।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममममृतं सुखं रथमथजीर्विविदथमा वदासि ॥

हे मनुष्य ! उन्नति कर, अवनति मत कर। इसी के लिये तुझे जीवन और वल प्रदान करता हूं। तेरा वह उत्तम शरीररूपी रथ है, जो अजरत्व-अमरत्व प्रदायक है। इसमें रहते हुए ही अमरत्व प्राप्त कर तथा अभ्युदय का अनुभव हो जाने पर दूसरों को भी योग्य मार्ग दिखा।"

ऐसे मन्त्रों से स्पष्ट है कि मानव को स्वयं मृत्यु से विजय पाकर आत्म-कल्याण तथा लोक-कल्याण के लिये अग्रसर होना चाहिये।

महर्षि वेदव्यास ने भी इस मृत्यु के वारे में कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए 'महाभारत' के शान्तिपर्व में कहा गया है कि—

सुप्तं व्याघ्रं महौघो वा मृत्युरादाय गच्छति।
सञ्चिन्वानकमेवैनं कामानामवितृप्तकम ॥२७७/१८॥

जल का वेग जैसे सोते हुए वाघ को वहाकर ले जाता है, वैसे ही काल नाना प्रकार के मनोरथ बांधते हुए और कामनाओं से अतृप्त बने हुए पुरुष को घसीट कर ले जाता है।

वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।
इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत् कृताकृतम् ॥११॥

भेड़ के बच्चे को जैसे वाघिन उठाकर ले जाती है, ऐसे ही मृत्यु पकड़कर ले जाती है। पुरुष यह सोचता रहता है कि मैंने यह कार्य कर लिया, यह कार्य करना वाकी है, और इतना आधा किया है तथा अभी आधा और पूरा कर लूंगा।

एवमीहासमायुक्तं मृत्युरादाय गच्छति।
कृतानां फलमप्राप्तं कार्याणां कर्मसङ्गिनाम् ॥२०॥

इस प्रकार की इच्छाओं से मुक्त मनुष्य को उसके किसी काम का

विचार न करके उसकी इच्छाओं को पूर्ण किये विना ही मृत्यु उसे पकड़-कर ले जाती है।

इसी प्रकार 'मनुसंहिता' में मृत्यु के आने का कारण वताया है कि—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥

वेद आदि शास्त्रों का अभ्यास न करने से, आचार-विचार का त्याग कर देने से, आलस्य करने से तथा अन्न-दोष से विप्रों—ज्ञानियों को मृत्यु नष्ट करना चाहती है।

इसी के साथ आहार-विहार की अनियमितता और सात्त्विक तत्त्व के अभाव से भी मृत्यु का आक्रमण जल्दी होता है।

गीता (अ० १७ श्लो० ८-९-१०) में तो स्पष्ट कहा है कि सात्त्विक—जिसमें आयु, वुद्धि, वल, आरोग्य, सुख और प्रीति को वढ़ानेवाले रस-युक्त, चिकने, स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही प्रिय लगने वाले, आहार ही उत्तम होते हैं। चटपटे, कड़ुवे, तीखे, गरम, अस्वादु, उत्तेजक और रूखे आहार से रोग वढ़ते हैं तथा वुद्धि और स्वभाव राजस और तामस वन जाते हैं। सम्भवतः इन्हीं सवसे प्रेरणा पाकर प्राचीन-काल से ही ऋषि-मुनियों ने अपनी दैनिक प्रार्थनाओं में ये मन्त्र भी जोड़ दिये थे—

१. असतो मा सद् गमय।

(हे प्रभो !) मुझे असत् से सत् की ओर ले चल।

२. तमसो मा ज्योतिर्गमय।

(हे प्रभो !) मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल।

३. मृत्योर्माऽमृतं गमय।

(हे प्रभो !) मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चल।

● अमृत-प्राप्ति का अधिकार तथा उसके दाता महामृत्युञ्जय

मनुष्य अमृत का पुत्र है। अमृत ही उसका स्वरूप है। अमृत से ही उसका जन्म हुआ है। अमृत के सहारे ही उसकी स्थिति, गति और श्री-वृद्धि है। अमृत-स्वरूप में स्थिति प्राप्त करने में ही उसके जीवन की सार्थ-कता है तथा अमृतस्वरूप में प्रतिष्ठालाभ करने का उसका जन्मसिद्ध

अधिकार है। यही कारण है कि हमारे शास्त्र सदा से मनुष्य को यह प्रेरणा देते रहे हैं:—

"हे मनुष्य! तू अपने आपको पहचान। अपनी आत्मचेतना को जागृत कर और इस सनातन-सत्य को पूर्णरूप से आत्मसात् कर ले कि—'मैं अमृत का पुत्र ही मर्त्यलोक में अवतीर्ण हुआ हूं। अमृत के द्वारा ही मेरी सत्ता का निर्माण हुआ है, मेरे चारों ओर की सभी वस्तुएं मृत्यु के अधीन होने पर भी मैं स्वरूपत: अजर-अमर हूं। मैं जो कुछ लेकर इस जगत् में विहार कर रहा हूं, उस सबको मृत्यु खा जाती है परन्तु मुझे स्पर्श करने की क्षमता भी मृत्यु में नहीं है। मैं मृत्यु के राज्य में अपने को मृत्युञ्जय के रूप में प्रतिष्ठित करके अमृत की विजय-पताका फहराने के लिए उत्पन्न हुआ हूं।"

जन्म लेते ही मानव-शिशु को मृत्यु की अनुचरी शक्तियां भीतर और बाहर से घेर लेती हैं। उस समय वह अपने आपको भूल जाता है। उसमें न ज्ञान का प्रकाश होता है और न कर्म की शक्ति होती है। न शक्ति की दृष्टि होती है और न इच्छाशक्ति का प्रभाव होता है। उस समय वह मृत्युमय संसार की अगणित शक्तियों के हाथ की एक कठ-पुतली मात्र होता है। ऐसा लगता है, मानो मृत्यु किसी भी समय उसको ग्रास बना सकती है। उसके देह, इन्द्रिय मन सभी मृत्यु के अधीन होते हैं। उसका उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं रहता। उस असहाय अवस्था में उसके माता-पिता एवं परिवार, मित्रगण आदि उसकी क्या सहायता कर सकते हैं, वे तो केवल सान्त्वना और आवश्यक उपचार करके अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते हैं किन्तु वस्तुत: मृत्यु को जीतने का उपाय तो साधना, उपासना और आराधना ही है।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा की असीम कृपा ही मृत्यु से बचाकर अमृतत्व दिलाने में समर्थ है। इसीलिये वह 'मृत्युञ्जय' है। 'अमृतेश्वर' है। शिव की जटा में जो चन्द्रकला है वही अमृतकला है। वे अपने भक्त को उसी के द्वारा अमर बनाते हैं।

पुराणों में प्रसिद्ध कथा है कि 'भगवान् विष्णु ने शिवजी की कृपा प्राप्त करने के लिए सहस्र कमलों से भगवान् शिव की पूजा की थी। उसमें

परीक्षा के निमित्त से अन्तिम संख्या का एक कमल कम हो गया था। विष्णु ने अपने स्थान से न उठने का निर्णय कर रखा था। एकासन से बैठे यह पूजा पूर्ण कैसे हो ? इसका समाधान उन्होंने अपने 'कमल-नयन-पुण्डरीकाक्ष' नाम के द्वारा ढूंढ़ निकाला और तत्काल अपने तीखे वाण की नोक से नेत्रकमल को निकालकर शिवजी को अर्पित कर दिया। पूजा पूरी हुई। शिव प्रसन्न हुए और 'नेत्रदान दिया, 'चक्र' दान दिया तथा असुरों के प्रहार से वचकर अमृतत्व प्राप्त करने के लिए **महामृत्युञ्जय-मन्त्र** भी प्रदान किया। वही मन्त्र देवताओं को विष्णु ने वतलाया और वे अजर-अमर वन गये।'[1]

●मृत्युञ्जय-शिव का शास्त्रोक्त स्वरूप

'नारायणोपनिषद्' में कहा गया है कि—'एक ही अव्ययात्मा महादेव की १. आनन्द, २. विज्ञान, ३. मन, ४. प्राण और ५. वाक्' रूप पांच कलाएं हैं। इनमें आनन्द-कलामय रूप 'मृत्युञ्जय' शिव हैं। विज्ञान 'दक्षिणामूर्ति' रूप है। मन 'कामेश्वर' रूप है। प्राण 'पशुपति' (नील-लोहित) रूप है और वाक् 'भूतेश' रूप है।

उपर्युक्त उपनिषत्-प्रदर्शित तत्त्व के आधार पर ही श्रीमृत्युञ्जय भगवान् की आनन्द-प्राप्ति के लिए निरन्तर चिरकाल से साधना-पूजा-स्मरण होते आये हैं। शास्त्रों में देवताओं के स्वरूप का परिचय प्राप्त करने के लिये साक्षात् वर्णन के अतिरिक्त उनके ध्यान-पद्य भी पूर्ण सहायक होते हैं।

'शारदातिलक' में मृत्युञ्जय भगवान् का एक ध्यान-पद्य इस प्रकार प्राप्त होता है —

---

१. 'महिम्नः स्तोत्र' के एक पद्य में पुष्पदन्त ने यही गाथा इस प्रकार कही है—

हरिस्ते साहस्रं कमलवलिमादाय पदयो—
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन् नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुष—
स्त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥१७॥

चन्द्रर्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं,
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पार्णि हिमांशुप्रभम्।
कोटीरेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं,
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये॥१८/१०॥

इसके आधार पर मृत्युञ्जय शिव का स्वरूप 'चन्द्र, सूर्य और अग्नि-रूप त्रिनेत्र, प्रसन्न मुख, दो पद्म-कमलों में स्थित; मुद्रा, पाश, मृग और अक्षसूत्र-मालाओं को चार हाथों में धारण किये हुये, चन्द्रमा जैसे गौर-वर्ण, मस्तक पर विराजमान चन्द्रकला से वहती हुई सुधा से अभिषिक्त शरीरवाले, हार आदि आभूषणों से देदीप्यमान, अपनी शान्ति से विश्व को मोहित करनेवाले' के रूप में प्रकट होता है। इसमें कमलासन आनन्दरूप प्रतिष्ठात्मिका-शक्ति का, मुद्रा (अभय) प्राण शक्ति का, पाश दण्ड-प्रदान-सामर्थ्य का, मृग त्रयीविद्या का और माला शब्दात्मक स्फोट का प्रतीक माना गया है।

इसी प्रकार एक अन्य ध्यान पद्य में कहा गया है कि—

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरामृतद्वयघटं कैलासकान्तं शिवं,
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

अर्थात्—दो हाथों से दो अमृत घटों द्वारा अपने सिर पर अभिषेक करते हुए, अन्य दो हाथों से मृग तथा अक्षमाला को धारण किये हुए और अन्य दो हाथों में अमृत से पूर्ण दो घट अपनी गोद में रखे हुए, कैलास पर्वत के समान गौरवर्ण, स्वच्छ कमल पर विराजमान, नवीन्द्र चन्द्रमा-युक्त मुकट वाले त्रिनेत्र, भगवान् शिव का मैं स्मरण करता हूं।"

इस पद्य से प्रतीत होता है कि महामृत्युञ्जय-शिव षड् भुज हैं और उन भुजाओं में से चार में अमृत-कलश लिये हुए हैं। इससे ऐसा लगता है कि वे अमृत से ही स्नान करते हैं, अमृत का ही पान करते हैं और अमृत ही भक्तों को पिलाकर उन्हें अमर वनाते हैं।

एक अन्य पद्य में 'पार्वती-सहित मृत्युञ्जय' भगवान् का भी ध्यान वर्णित है। यथा—

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः,
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सुकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ् मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थ-चन्द्रस्रवत्—
पीयूषोन्नतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं शङ्करम् ॥

वैसे तो यह ध्यान-पद्य पूर्वोक्त पद्य के भावों को ही व्यक्त करता है किन्तु इसमें विशेषता यह है कि भगवान् मृत्युञ्जय अमृतेश्वरी भगवती गिरिजा के साथ अमृत से स्नान कर रहे हैं।

महामृत्युञ्जय-स्तोत्र के एक ध्यान-पद्य में तो मृत्युञ्जय भगवान् को सर्व प्रकार से अमृतमय ही व्यक्त किया है। यथा—

पीयूषांशुसुधामणिः करतले पीयूषकुम्भं वहन्,
पीयूषद्युति-सम्पुटान्तरगतः पीयूषधाराधरः।
मां पीयूषमयूखसुन्दरवपुः पीयूषलक्ष्मीसखा,
पीयूषद्रववर्षणस्त्वहरहः प्रीणातु मृत्युन्युजयः ॥

इसके अनुसार भगवान् शिव आमूल-चूल अमृतछटा से परिपूर्ण हैं। 'अमृतरुद्र' के ध्यान में भी ऐसा ही वर्णन है—

स्फुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखा—
गलदमृतरसार्द्रं चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम्।
स्वकरकलितमुद्रा — वेदपाशाक्षमालं,
स्फटिकरजतमुक्तागौरमीशं नमामि ॥

इसी प्रकार 'मन्त्रमय मृत्युञ्जय' का स्वरूप भी अन्यत्र ध्यान-रूप में बतलाया गया है। यथा—

प्रणवरचितनालं मन्त्रमध्यार्णपत्रं,
भृगुविलसितमध्यं पत्रयुग्मं तदन्तः।
कृतवसतिमुमेशं वर्णनिर्यत्सुधार्द्रं,
कलयतु हृदि नित्यं सर्वदुःखप्रशान्त्यै ॥

इसमें 'ॐकार से नाल, 'जूं' मध्यपत्र तथा मध्यभाग 'सः' से युक्त है। इस प्रकार दो पत्र एवं नाल में लघुमृत्युञ्जय के तीन अक्षर और अन्य एक पत्र में भगवान् उमेश विराजमान हैं तथा मन्त्राक्षरों से अमृत

झरने से उनका शरीर अभिषिक्त हो रहा है, ऐसे स्वरूप के अपने हृदय में सदा सर्वविध दुःखों की शान्ति के लिये निवास की कामना की गई है। तथा—

अच्छस्वच्छारविन्दस्थितिरुभयकराङ्कस्थितं पूर्णकुम्भं,
द्वाभ्यां वेदाक्षमाले निजकरकमलाभ्यां घटौ नित्यपूर्णौ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलाबन्धुरे प्लावयन्तौ,
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजालः श्रियं नः॥

यह पद्य भी पूर्वोक्त स्वरूप को ही अन्य पद्धति से प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार 'शताक्षरी-गायत्री' में तीन मन्त्रों का समावेश होता है, उसी प्रकार 'मृत्युञ्जयशताक्षरी' मन्त्र का विधान भी आयुष्यप्राप्ति के लिये अमोघ माना गया है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों के मन्त्रों का योग है। उस समय का ध्यान त्रिदेव का सम्मिलित स्वरूप इस रूप में प्रकट करता है—

हेमाम्भोजे निषण्णं स्रवदमृतघटौच क्रशङ्खौ कराब्जैः—
रक्षस्रक्कुण्डिकाख्ये शशिशकलधरं धारयन्तं सुभूषम्।
हेमाभं पीतवस्त्रं रविशशिदहनत्रीक्षणं चित्स्वरूपं,
सर्वज्ञं सर्वगं तं विधिहरिहरजं विश्वरूपं नमामि॥

इसमें वर्णित स्वरूप की छटा कुछ अनूठी ही है। अकारण करुणा करने में परायण परमात्मा की लीला अतिविचित्र है, वे अपने भक्तों के कष्ट निवारण के लिये किन-किन रूपों में अवतरित होते हैं, किस-किस प्रकार से हमारी रक्षा करते हैं? यह सब लिखना सामान्य मनुष्य के सामर्थ्य की वात नहीं है।

आम्नायों के अनुसार मन्त्रों के स्वरूपों में जैसे सामान्यरूप से परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार इष्टदेव के ध्यान भी बदलते रहते हैं। **'वामदेव-संहिता'** के अनुसार दक्षिणाम्नायात्मिका वगलामुखी देवी के **भैरव मृत्युञ्जय** हैं और उनकी उपासना भी दक्षिणाम्नाय से होती है। तब **'चन्द्रर्काग्निविलोचन'** पद्य से उनका ध्यान होता है। ब्रह्मस्वरूपिणी ऊर्ध्वाम्नायात्मिका बगला के भरैव **'त्र्यम्बक मृत्युञ्जय'** हैं जिनकी

उपासना ऊर्ध्वाम्नाय से होती है उनका ध्यान **'हस्ताभ्यां कलशद्वयामृत-रसैः'** इत्यादि पद्य से किया जाता है ऐसा मेरुतन्त्र का वचन है। और उभय आम्नायात्मिका बगला के भैरव **'महामृत्युञ्जय'** हैं जिनकी उपासना उभयाम्नाय से होती है। उनका ध्यान **'हस्ताम्भोजयुगस्थ'** इत्यादि पद्य से होता है। **मन्त्रमहोदधि** में इसका वर्णन किया है।

● आम्नाय-परिचय

तन्त्रशास्त्रों में दस दिशाओं के अनुसार दस आम्नाय हैं। उनमें से मुख्य छह आम्नाय शिव के छह मुखों से उत्पन्न हुए हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्व—ये पांच आम्नाय तान्त्रिक ग्रहण करते हैं और छठा अधरानाम्य वैदिकमतानुयायो ग्रहण नहीं करते। अन्य चार आम्नाय—उत्तर और पूर्व मिलकर ईशानाम्नाय, पूर्व और दक्षिण मिल कर आग्नेयाम्नाय, दक्षिण और पश्चिम मिलकर नैर्ऋत्याम्नाय तथा पश्चिम और उत्तर मिलकर वायव्याम्नाय होता है। इनमें नैर्ऋत्याम्नाय भी प्रायः अच्छे साधक स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि यह भी यक्षिण्यादि साधनों में ही उपयोगी माना गया है।

● महामृत्युञ्जय-मन्त्र : स्वरूप, अर्थ एवं तात्पर्यार्थ

यजुर्वेद-संहिता में यह मन्त्र निम्नरूप से प्राप्त होता है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

अन्वय की दृष्टि से इसका स्वरूप यह है—

त्र्यम्बकं सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं यजामहे। मृत्योर्बन्धनात् उर्वारुकमिव मुक्षीय अमृतात् मा (मुक्षीय)।

अर्थ—वैदिक ऋचाओं के अर्थ तीन प्रकार से किये गये हैं—

१—स्थूल, २—सूक्ष्म और ३—पर। इनमें पदों के संसर्ग से उत्पन्न अर्थ स्थूल, पदों के आधार पर उनकी आलोचना से निकाला गया अर्थ सूक्ष्म तथा अप्रमेय आदि भावों के द्वारा अक्षरों में स्थित अर्थ का उद्भावन पर अर्थ कहलाता है।[1] तत्त्वचिन्तकों ने आधिभौतिक अर्थ को स्थूल,

---

१. स्थूलः संसर्गजो योऽर्थः सूक्ष्मः पदविभावितः।
अप्रमेयादिभिर्भावैरक्षरस्थः परः स्मृतः॥

आध्यात्मिक अर्थ को सूक्ष्म तथा आधिदैविक अर्थ को पर अर्थ की संज्ञा भी दी है। इस सिद्धान्त का अनुसरण यास्क तथा स्कन्दस्वामी आदि सभी आचार्यों ने किया है। इस पद्धति के आधार पर 'त्र्यम्वकम्' मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—

१. अहिर्बुध्न्य के मत में—'**तिस्रः अम्बिकाः** (मातरः) **यस्य सः त्र्यम्बकः**' अर्थात् इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति—ये तीनों विश्व का निर्माण करने वाली माताएं हैं। यह शक्तित्रय जिसके वश में हों, वह त्र्यम्वक कहलाता है। २. वैदिक परिभाषा में इन तीनों माताओं को १ गायत्री छन्द (ज्ञान शक्ति), २ त्रिष्टुप् छन्द (इच्छा शक्ति) तथा ३ जगती छन्द (क्रियाशक्ति—अर्थशक्ति) कहा गया है। पौराणिक परिभाषा में क्रियाशक्ति का ही दूसरा नाम अर्थशक्ति है। ३. महर्षि कणाद ने इन तीनों को ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न—इन शब्दों से परि-भाषित किया है।

४. पौराणिक मत में—**त्रीणि अम्बकानि** (नेत्राणि) **सन्ति यस्य स त्र्यम्बकः**' अर्थात् जिसके अग्नि, चन्द्र और सूर्य—ये तीन नेत्र (प्रकाश) हैं वह त्र्यम्वक कहलाता है। ५. **सांख्यशास्त्र** के प्रणेता महर्षि कपिल ने सत्त्व, रज और तम—ये तीन नेत्र माने हैं। ६. **याज्ञिकों** ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक—को तीन नेत्र कहा है। **मीमांसकों** की परिभाषा में ऋग्, यजुः और साम—ये तीन वेद ही नेत्रत्रय हैं। जैसा कि कुमारिल भट्ट ने 'तन्त्रवार्तिक' में कहा है—

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे॥

—दुर्गासप्तशती

८. इसके अतिरिक्त शाण्डिल्य ने '**भक्तिमीमांसा**' में प्रत्यक्ष, अनु-मान और शब्द—इन तीनों को त्र्यम्बक (महादेव) के तीन नेत्र माना है।

९. **ज्योतिषियों** के मत में—भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल महाकाल—त्र्यम्वक के नेत्र हैं, जबकि—

१०. वेदान्त में चित्त, अहंकार एवं बुद्धि को और ११. योगियों

के मत में 'अ, उ म्' इन तीनों (प्रणवाक्षरों) को शिव के तीन नेत्र माना है।

'सुगन्धिम्'—जो आत्मतेज से समस्त तत्त्वों को शोभन-सुगन्धमय बनाता है अर्थात् उन-उन वस्तुओं को स्व-स्वरूप में स्थिर रखता है और अपने अन्तः प्रवेश से उन वस्तुओं को अपना सुगन्धमय स्वरूप देकर उन्हें सहसा विकृत नहीं होने देता, वह परमात्मा इस पद में सुगन्धि पद से अभिहित है। **बौद्धमतावलम्बी** वसुवन्धु ने समगन्ध—तत्त्व को अविकृति एवं पुष्टप्रद माना है तथा विषम गन्ध तत्त्व को दुर्वलता तथा विकारप्रद कहा है। समगन्ध तत्त्व ही पृथ्वी आदि तत्त्वों की) स्थूलता तथा पदार्थों की अविकृति का कारण है। इसीलिए धर्मशास्त्रों में सुगन्ध पुष्पों का धारण आरोग्य और पुष्टि का कारण कहा गया है।

पुष्टिवर्धनम्—परमात्मा पुष्टि-वर्द्धक है। यहाँ पुष्टि का अर्थ 'पोषण, लक्ष्मी और भूति' है। पुष-पुष्टौ (धातु) से 'क्तिन्' प्रत्यय द्वारा पुष्टि शब्द बनता है। 'आनन्दार्णव-तन्त्र' में—'पुष्टिलक्ष्मीस्वरूपिणी' कहकर इसका अर्थ लक्ष्मी कहा गया है। तान्त्रिकों की परिभाषा में इसे शक्ति माना है। पौराणिकों की परिभाषा में माया और तत्त्वचिन्तकों की परिभाषा में यह प्रकृति कही जाती है। इस पुष्टि को जो बढ़ाता है अर्थात् सूक्ष्मावस्था से स्थूलावस्था में लाकर उसे विविध रूप में परिणत कर देता है, वही परमात्मा पुष्टिवर्द्धन है।

यजामहे—का अर्थ है कि हम जप करने वाले त्र्यम्वक परमात्मा के लिए अपने आपको समर्पित कर उससे अपना सम्वन्ध जोड़ते हैं। यहां यज धातु का अर्थ—किसी देवता विशेष को उद्देश्य करके द्रव्य का त्याग करना है।[1] 'यज—'देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु' इस धातु से निष्पन्न 'यजामहे' क्रिया का अर्थ यज्ञ करते हैं, यह होता है। मीमांसकों ने स्थूल द्रव्य (हवन पूजा सामग्री) के माध्यम से आध्यात्मिक शक्तियों का आधिदैविक शक्तियों के साथ सम्वन्ध स्थापित करने को यज्ञ कहा है। इस मीमांसानुसारी सिद्धान्तानुसार यजामहे का अर्थ-स्थूल पदार्थों के माध्यम से प्रस्तुत तीन शक्तियों के स्वामी महान् देव अमर होने से मृत्यु का,

---

१. यजतिर्द्रव्यसन्त्यागः काञ्चिदुद्दिश्य देवताम्।

प्रकाशमय होने से अन्धकार का एवं स्थाणु होने से अस्थिरता का प्रतिपक्षी (विरोधी) है तथा अमृत, प्रकाश तथा स्थिरभाव का उद्गम स्थल है।

'मृत्योर्बन्धनात् उर्वारुकमिव मुक्षीय' का अर्थ है—अतः हम भी वेदों में निर्दिष्ट (सौ प्रकार की रोगादि) मृतियों, अष्टविध अज्ञानपर्वों और सतत परिणामशील जन्म-मरण-रूपी संसरणात्मक बन्धन से मुक्त होकर उसी प्रकार मृत्युञ्जय की प्राप्ति की इच्छा करते हैं, जिस प्रकार पका हुआ फल (खीरा-खरबूजा आदि) बिना किसी कष्ट के वन्धन-मुक्त हो जाता है। यहां मृत्यु शब्द अज्ञान, प्राणपहारक शक्ति, बन्धनात्मक संसार—इन तीनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अज्ञानवाचक मृत्यु शब्द की निरुक्ति—**"मतिं ज्ञानं त्यजति अनेन इति मृत्युः"** जिससे मनुष्य ज्ञान-रहित हो जाता है, वह अज्ञान मृत्यु है। प्राणापहारक मृत्यु शब्द की परि-भाषा है।

'मृतिं तनोति जन्तूनामिति मृत्युरिति स्थितिः'—जो प्राणियों के प्राणों का प्रतिक्षण संहार करती है, वह मृत्यु शक्ति है तथा—**"मृतिः-सन्तानरूपत्वान्मृत्युः संसार उच्यते"** अर्थात् मरणधर्मा होने से संसार भी मृत्यु कहलाता है। इन तीन प्रकार की मृत्युओं से मुक्ति दिलाना ही इस मन्त्र का महान् उद्देश्य है।

'अमृतात् मा मुक्षीय'—का भावार्थ यह है कि 'अमर, प्रकाशरूप, सतत एकरूप ब्रह्म के साथ जापक ने जो सम्बन्ध स्थापित किया है, उससे जापक भी अमर, प्रकाशमय और स्थिर होकर रहे, तथा उस अमृतमय परमात्मा से उसका सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न न हो।

इस प्रकार उक्त मन्त्र के द्वारा जीवात्मा और परमात्मा के सनातन-सम्बन्ध की स्थिरता और आत्मा के स्वस्त्ययन (सर्वविध कल्याण) की कामना की गई है।

● वैदिक अन्य अर्धमन्त्र—

महामृत्युञ्जय जैसा ही दूसरा मन्त्र भी इसी के साथ वेद में आया है। उसमें **'पुष्टिवर्धनम्'** के स्थान पर **'पतिवेदनम्'** और **'मृत्योर्मुक्षीय**

मामृतात्' के स्थान पर **'इतो मुक्षीय मामुतः'** पाठ है। 'शतपथब्राह्मण' में इस मन्त्र के जप का विधान उन विवाहयोग्य कन्याओं के लिये है, जिन्हें इच्छित पति-प्राप्ति में विलम्ब हो रहा हो। यह **'पतिञ्जय मन्त्र'** है। इस मन्त्र से कामना की गई है कि विवाहित कन्या पितृकुल से भले ही छूट जाय पर पतिकुल से उसका सम्बन्ध सदा बना रहे।[1]

भिन्न-भिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न वैदिक मन्त्रों का विनियोग **'ऋग्विधान'** आदि ग्रन्थों में दिया है। अरिष्टनिवारण, सुख-समृद्धि तथा उत्तम स्वास्थ्य ही अभिवृद्धि के लिए 'त्र्यम्बकं यजामहे' इस अनुष्टुप् ऋचा के जप का विधान है ! यह ऋचा **'महामृत्युञ्जय'** नाम से भी प्रख्यात है। इस मन्त्र के जप का परिणाम मन्त्र के विशद अर्थ से प्रतीत हो रहा है।

'साधनमाला'—ग्रन्थ के अनुसार प्रत्येक मन्त्र के अक्षरों में विभिन्न वर्णवाली तेजोरश्मियां विद्यमान रहती हैं। जापक जब अपने अभीष्ट मन्त्र का जप करता है, तब वे रश्मियां साधक की भावनाओं के साथ शरीर के रोमकूपों से चतुर्दिक् बाहर निकलती हैं और अंकुशाकार बनकर उन विभिन्न साध्यों का आकर्षण करती हैं, जिन्हें साधक ने वांछनीय और प्राप्तव्य बनाया है। उक्त ऋचा को अनवरत जपने से ऋचा के तेजोमय वर्ण उपर्युक्त सिद्धान्त से जापक के लिए सुगन्ध, पुष्टि और अमरता को उत्कृष्ट करते हैं, जिनसे विकृति, दुर्बलता और अकालमृत्यु का विनाश होता है।

● महामृत्युञ्जय मन्त्र के (अक्षरों) के अर्थ

महर्षि वसिष्ठ ने मन्त्रगत वर्ण (अक्षर), पद, वाक्य, चरण, आधी ऋचा और सम्पूर्ण ऋचा इन छह अङ्गों के अर्थों को भिन्न-भिन्न अभि-प्राय से समझाया है। 'त्र्यम्बकम्' मन्त्र के ३३ अक्षर हैं जो वसिष्ठ के अनुसार ३३ देवताओं (दिव्य-शक्तियों) के द्योतक हैं। इन ३३ देवताओं की गणना इस प्रकार है—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति एवं

---

१. स्वामी श्री अनिरुद्धचार्य वेंकटाचार्यजी के लेख से। ३५।६। कल्याण

१ वषट्कार। ये तैंतीस देवता प्राणियों के भिन्न-भिन्न शरीर के अङ्गों में स्थित हैं। सवल तथा जाग्रत् अवस्था में ये शक्तियां प्राणियों के शरीर की रक्षा और संहारक शक्तियों का विनाश करती हैं। शरीरगत शक्तियों का सवल एवं जाग्रत् रहना ही जीवन है और उनका निर्बल तथा सुप्त हो जाना ही मृत्यु है।

महामृत्युञ्जय मन्त्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकाशात्मक वर्ण शरीर में स्थित विभिन्न शक्तियों के सजातीय हैं, अत: वे मन्त्रजप से जागरित होकर जीवन को सबल और सुरक्षित वनाती हैं तथा विघ्नों का नाश करती हैं।

कौन-कौन वर्ण किस-किस शक्ति का सजातीय है और वह शक्ति शरीर के किस-किस स्थान में रहती है ? इसका महर्षि वसिष्ठ ने विस्तार **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** के सिद्धान्त पर वतलाया है, जिसे न्यास-विधि में भी प्रयुक्त किया जाता है।

(१) मन्त्रगत अक्षरों के अर्थ—

(१) **'त्रि'**—ध्रुव वसु (प्राण) का वोधक है, जो सिर में स्थित है।

(२) **'यम्'**—अध्वरवसु (प्राण) का वोधक है, जो मुख में स्थित है।

(३) **'ब'**—सोम वसु (शक्ति) का वोधक है, जो दक्षिण कर्ण में स्थित है।

(४) **'कम्'**—जल वसु (देवता) का बोधक है, जो वाम कर्ण में स्थित है।

(५) **'य'**—वायु वसु का बोधक है, जो दक्षिण बाहु में स्थित है।

(६) **'जा'**—अग्नि वसु का बोधक है, जो वाम बाहु में स्थित है।

(७) **'म'**—प्रत्यूष वसु (शक्ति) का बोधक है, जो दक्षिण बाहु-मध्य में स्थित है।

(८) **'हे'**—प्रभास वसु का बोधक है, जो मणिबन्ध में स्थित है।

(९) **'सु'**—वीरभद्र रुद्र (प्राण) का बोधक है, जो दक्षिणहस्तांगुलिमूल में स्थित है।

(१०) 'ग'—शम्भु रुद्र का बोधक है, जो दक्षिण हस्तांगुलि के अग्र-भाग में स्थित है।

(११) 'न्धिम्'—गिरीश रुद्र (शक्ति) का बोधक है, जो वामवाहु-मूल में स्थित है।

(१२) 'पु'—अजैकपात् रुद्र (शक्ति) का बोधक है, जो वामहस्त के मध्य में स्थित है।

(१३) 'ष्टि'—अहिर्बुध्न्य रुद्र का बोधक है, जो वामहस्त के मणि-बन्ध में स्थित है।

(१४) 'व'—पिनाकी रुद्र (प्राण) का बोधक है, वामहस्तांगुलिमूल में स्थित है।

(१५) 'र्ध'—भवानीश्वर रुद्र का बोधक है, जो वामहस्तांगुलि के अग्रभाग में स्थित है।

(१६) 'नम्'—कपाली रुद्र का बोधक है, जो दक्ष ऊरु-मूल में स्थित है।

(१७) 'उ'—दिक्पति रुद्र का बोधक है, जो दक्ष जानु में स्थित है।

(१८) 'र्वा'—स्थाणु रुद्र का बोधक है, जो दक्ष गुल्फ में स्थित है।

(१९) 'रु'—भर्ग रुद्र का बोधक है, जो दक्ष पादांगुलिमूल में स्थित है।

(२०) 'क'—धाता आदित्य का बोधक है, जो दक्षपादांगुलियों के अग्रभाग में स्थित है।

(२१) 'मि'—अर्यमा आदित्य का बोधक है, जो वाम ऊरुमूल में स्थित है।

(२२) 'व'—मित्रादित्य का बोधक है, जो वाम जानु में स्थित है।

(२३) 'ब'—वरुणादित्य का बोधक है, जो वाम गुल्फ में स्थित है।

(२४) 'न्ध'—अंशु आदित्य का बोधक है, जो वाम पादांगुलिमूल में स्थित है।

(२५) 'नात्'—भगादित्य का बोधक है, जो वामपादांगुलियों के अग्र भाग में स्थित है।

(२६) 'मृ'—विवस्वान् का बोधक है, जो दक्षपार्श्व में स्थित है।

(२७) 'त्योः'—इन्द्रादित्य का बोधक है, जो वाम पार्श्व में स्थित है।

(२८) 'मु'—पूषादित्य का बोधक है, जो पृष्ठ में स्थित है।

(२९) 'क्षी'—पर्जन्यादित्य का बोधक है, जो नाभि में स्थित है।

(३०) 'य'—त्वष्टा आदित्य (शक्ति) का बोधक है, जो गुह्य में स्थित है।

(३१) 'मा'—विष्णु आदित्यशक्ति का बोधक है, जो दोनों भुजाओं में स्थित है।

(३२) 'मृ'—प्रजापति (प्राण) का बोधक है, जो कण्ठभाग में स्थित है।

(३३) 'तात्'—अमित वषट्कार का बोधक है, जो हृदय में स्थित है।

प्रकारान्तरों से इन्हीं वर्णों के अर्थ भी प्राप्त होते हैं जिनमें शक्तियों के सहित देवताओं की बोधकता और स्थिति बतलाई गई है। यथा—

१. त्र्यम्—त्रिनेत्रा शक्ति सहित त्र्यक्षेश का बोधक है, जो शिखा में स्थित है।

२. ब—प्रभेदिनी शक्ति सहित बालार्कतेज का बोधक है, जो शिर में स्थित है।

३. कं—कल्याणी शक्ति सहित कालानन्तेश का बोधक है, जो ललाट में स्थित है।

४. य—यज्ञरूपा शक्ति सहित विघ्नेश का बोधक है, जो भ्रू-मण्डल में स्थित है।

५. जा—ज्वालामुखी शक्ति सहित जालन्धरेश का बोधक है, जो नेत्र युगल में स्थित है।

६. म—महाशक्ति सहित महादेवेश का बोधक है, जो कर्णयुगल में स्थित है।

७. हे—हैमवती सहित हाकिनीश का बोधक है, जो नासिका द्वारों में स्थित है।

८. सु—सुगन्धि सहित सुगन्धेश का बोधक है, जो कपोल-मण्डल में स्थित है।

९. ग—गम्भीरा सहित गन्धेश का बोधक है, जो ऊर्ध्वोष्ठि में स्थित है।

१०. न्धिम्—धीरा सहित महीश (प्राण) का बोधक है, जो अध-रोष्ठ में स्थित है।

११. पु—पूर्णा सहित पुण्डरीकाक्षेश का बोधक है जो ऊर्ध्वदन्तों में स्थित है।

१२. ष्टि—अधिष्ठानी सहित अधिष्ठेश का बोधक है, जो अधोदन्तों में स्थित है।

१३. व—वरेण्या सहित वरिष्ठेश का बोधक है, जो हनुयुगल में स्थित है।

१४. र्ध—धर्मा सहित धर्मेश का बोधक है, जो चिवुक में स्थित है।

१५. नं—नन्दिनी सहित नन्दीश का बोधक है, जो मुख में स्थित है।

१६. उ—उमा सहित ऋद्धीश प्राण का बोधक है, जो कण्ठ में स्थित है।

१७. र्वा—वामा सहित वरुणेश का बोधक है, जो दोनों कन्धों में स्थित है।

१८. रु—रूपवती सहित रुद्रेश का बोधक है, जो भुजयुगल में स्थित है।

१९. क—कान्ति सहित कान्तेश का बोधक है, जो हृदय में स्थित है।

२०. मि—शिवा सहित मीढुष्टमेश का बोधक है, जो हृदय में स्थित है।

२१. व—वेदगर्भा सहित वेदेश का बोधक है, जो स्तनमण्डल में स्थित है।

२२. बं—वन्धिनी सहित बन्धिनीश का बोधक है, जो हृदय में स्थित है।

२३. **ध**—धनुष्मती सहित धन्वीश का बोधक है, जो नाभि में स्थित है।

२४. **नात्**—पुष्टि सहित नाकेश्वर का बोधक है, जो कटि में स्थित है।

२५. **मृ**—मृत्युनाशिनी सहित मृत्युञ्जयेश का बोधक है, जो गुह्य में स्थित है।

२६. **त्योः**—नित्या सहित नित्येश का बोधक है, जो पायु में स्थित है।

२७. **मु**—मुकुन्दा सहित मुक्तीश का बोधक है, जो दोनों पार्श्वों में स्थित है।

२८. **क्षी**—क्षेमकरी सहित क्षितीश का बोधक है, जो ऊरुमण्डल में स्थित है।

२९. **य**—मन्त्रभेदिनी सहित योगीश का बोधक है, जो गुल्फयुगल में स्थित है।

३०. **मा**—मन्त्रप्रभेदिनी सहित मन्त्रेश का बोधक है, जो पादतलों में स्थित है।

३१. **मृ**—क्षमा सहित अमृतेश का बोधक है, जो पैरों के ऊर्ध्वभाग में स्थित है।

३२. **तात्**—तन्वीशा सहित तन्वीश का बोधक है, जो पादयुगल में स्थित है।[1]

● मन्त्रगत पदों की शक्तियां और देव

इसी प्रकार पदों के आधार पर भी प्रत्येक पद में शक्ति और देव की पृथक्, पृथक् बोधकता का ज्ञान भी निम्नलिखित है—

१. **'त्र्यम्बकम्'**—त्रैलोक्य शक्ति सहित त्रिपुरा-नरेश का बोधक है, जो सिर में स्थित है।

---

१. इस पद्धति में मन्त्राक्षरों की संख्या ३२ ही मानी गई है।

२. **'यजा'**—सुगन्धा शक्ति सहित यज्ञवतीश का बोधक है, जो ललाट में स्थित है।

३. **'महे'**—माया शक्ति सहित महत्तत्त्वेश का बोधक है, जो कानों में स्थित है।

४. **'सुगन्धिम्'**—सुगन्धि शक्ति सहित सुगन्धीश का बोधक है जो नासिका में स्थित है।

५. **'पुष्टि'**—पुरन्दरी शक्ति सहित पुरुषेश का बोधक है, जो मुख में स्थित है।

६. **'वर्धनम्'**—वशंकरी शक्ति सहित वरेश का बोधक है, जो कण्ठ में स्थित है।

७. **'उर्वा'**—ऊर्ध्वेश शक्ति सहित उमापतीश का बोधक है, जो हृदय में स्थित है।

८. **'रुक'**—रुक्मवती शक्ति सहित रूपवतीश का बोधक है, जो नाभि में स्थित है।

९. **'मिव'**—रुक्मवती शक्ति सहित रूपवतीश का बोधक है, जो कटि में स्थित है।

१०. **'बन्धनात्'**—वर्बरी शक्ति सहित बालचन्द्रमौलीश का बोधक है, जो गुह्य में स्थित है।

११. **'मृत्योः**—मन्त्रवती शक्ति सहित मन्त्रेश का बोधक है, जो ऊरुद्वय में स्थित है।

१२. **'मुक्षीय'**—मुक्तिकरी शक्ति सहित मुक्तिकरीश का बोधक है, जो जानुद्वय में स्थित है।

१३. **'मा'**—महाशक्ति सहित महाकालेश का बोधक है, जो जंघाद्वय में स्थित है।

१४. **'अमृतात्'**—अमृतवती शक्ति सहित अमृतेश का बोधक है, जो पादतल में स्थित है।

● मन्त्रगत वाक्यों के अर्थ

१. **'त्र्यम्बकम्'**—भूत शक्ति सहित भवेश का बोधक है, जो अधः-सहस्रार मूलाधार में स्थित है।

२. **'यजामहे'**—शर्वाणी शक्ति सहित शर्वेश का बोधक है, जा स्वाधिष्ठान में स्थित है।

३. **'सुगन्धिम्'**—विरूपा शक्ति सहित रुद्रेश का बोधक है, जो मणिपुर में स्थित है।

४. **'पुष्टिवर्धनम्'**—वंशवर्धिनी शक्ति सहित पुरुषवरदेश (पशुपतीश) का बोधक है जो अनाहत में स्थित है।

५. **'उर्वारुकमिव'**—उग्रा शक्ति सहित उग्रेश का बोधक है, जो विशुद्धि में स्थित है।

६. **'बन्धनात्'**—मानवती शक्ति सहित महादेवेश का बोधक है, जो आज्ञा में स्थित है।

७. **'मृत्योर्मुक्षीय'**—भद्रकाली शक्ति सहित भीमेश का बोधक है, जो सहस्रदल में स्थित है।

८. **'माऽमृतात्'**—ईशानी शक्ति सहित ईशानेश का बोधक है, जो सहस्रदल में स्थित है।

● प्रकारान्तर से वाक्यों के अर्थ

१. **'त्र्यम्बकम्'**—सर्वज्ञता शक्ति का बोधक है।

२. **'यजामहे'**—नित्यतृप्ति का बोधक है।

३. **'सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्'**—अनादिबोधिता शक्ति का बोधक है।

४. **'उर्वारुकमिव बन्धनात्'**—स्वतन्त्रता शक्ति का बोधक है।

५. **'मृत्योर्मुक्षीय'**—नित्यमलुप्ता शक्ति का बोधक है।

६. **'मामृतात्'**—अचिन्त्यानन्त शक्ति का बोधक है।

● मन्त्रगत ४ चरणों के अर्थ

१. **त्र्यम्बकं यजामहे**—अम्बिका शक्ति सहित त्र्यम्बकेश का बोधक है, जो पूर्व दिशा में प्रवाहित शक्ति में स्थित है।

२. **'सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्'**—वामा शक्ति सहित मृत्युञ्जयेश का बोधक है, जो दक्षिण दिशा में प्रवाहित शक्ति में स्थित है।

३. **'उर्वारुकमिक बन्धनात्'**—भीमा शक्ति सहित महादेवेश का बोधक है, जो पश्चिम दिशा में प्रवाहित शक्ति में स्थित है।

४. **मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्**—द्रौपदी शक्ति सहित संजीवनीश का बोधक है जो उत्तरदिशा में प्रवाहित शक्ति में स्थित है।

●मन्त्रगत पूर्वार्ध और उत्तरार्ध खण्डों के अर्थ

१—**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्**'—यह आधी ऋचा गौरीशक्ति सहित महेश की परिचायिका है, जो दक्षिण पाद में स्थित है।

२—**'उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्**'—यह आधी ऋचा व्यापिनी शक्ति सहित शाम्भवेश की परिचायिका है, जो वाम पाद में स्थित है।

●सम्पूर्ण मन्त्र का तात्पर्य

३३ वर्णों वाली महामृत्युञ्जय-मन्त्ररूप समग्र ऋचा अनाख्या शक्ति सहित सर्वाख्येश की बोधिका है, जो सर्वाङ्ग में विद्यमान है।

●मृत्युञ्जयमन्त्र के वर्णों की शक्तियां और उनका जागरण

इस प्रकार मन्त्रगत **वर्ण, पद, वाक्यादि से** प्रतीयमान सब शक्तियाँ शरीर के तत्तत् स्थानों में निवास करती हैं। देवता मन्त्रमय हैं, अतः मन्त्र के उच्चारण से देवताओं का उल्लास होता है। शक्तियों का उल्लास ही स्थिति है। अमृत है। शक्तियों की सुषुप्ति ही अन्धकार है, मृत्यु है। सुषुप्त शक्तियां मन्त्रजप से जाग्रत् होकर स्थिति भाव की संरक्षिका बनती हैं, क्योंकि मन्त्र में **'सुगन्धि'** और **'पुष्टिवर्धन'** जैसे शब्द हैं। सुगन्धि का अर्थ यहां पुण्य और विस्तृत कीर्ति है और कीर्ति का पर्याय यश है। यश चान्द्रीशक्ति है, जो 'अमृता' बनकर शक्तियों का संरक्षण करती है। **'पुष्टिवर्धनम्'** यह शक्तिवर्धन का सूचक है।

शब्दब्रह्म (शब्दों) में वर्ण अक्षर कहलाते हैं। ये ही वर्ण अर्थब्रह्म पदार्थों में 'कला' कहलाते हैं। वर्ण शब्द प्रकाश का वाचक है। शब्दब्रह्म विचित्र प्रकाशमय वर्णों का समुदाय है तो अर्थब्रह्म भी विभिन्न प्रकाशमय कलाओं का समूह है। दोनों ब्रह्म परस्पर एक

दूसरे में मिले हुए हैं। इसीलिये शब्द से अर्थ का और अर्थ से शब्द का ज्ञान होता रहता है और शब्द अर्थरूप से तथा अर्थ शब्दरूप से परिणत होते रहते हैं। जिन विचित्र रंगों के प्रकाशों के संयोग से अमृतत्व सिद्ध होता है, अथवा जो प्रकाश अमृतरूप से परिणत होते रहते हैं, उन सब प्रकाशों का संग्रह अक्षरों के द्वारा मृत्युञ्जय-मन्त्ररूप ऋचा में है। इस मन्त्र के उच्चारण से सर्वविध प्रकाश जाग्रत् होते हैं और वे अमृत का उत्पादन तथा आकर्षण करते हैं।

शास्त्रों में यह भी निर्देश है कि किसी भी मन्त्र के फल की शीघ्र सिद्धि के लिए मन्त्र में जो अक्षर हों उसी जाति के प्रकाश से जो औषधियां बनी हैं, उन सब औषधियों से 'गुटिका' बनाकर उसे धारण करना चाहिए।[1] मन्त्र के वर्णों के आधार पर संगृहीत औषधियों से ही पुरश्चरण-काल में क्वाथ बनाकर जल में मिलाना और उससे स्नान करना, उनका चूर्ण बनाकर धूप देना, धूप से निकली हुई भस्म को अपने अंग पर लगाना, उसी औषधि को पीसकर चन्दन के समान शरीर पर लेपन करना आदि, अनेक प्रयोग मन्त्रवर्णों की शक्ति को जागरित करने के लिए बतलाये गये हैं।

तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों से यह सब ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये तथा स्वयं भी उत्कृष्ट ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये, जिससे बुद्धि में निर्मलता आकर करणीय कर्म के लिए स्फुरणा प्राप्त होगी।

● महामृत्युञ्जय-मन्त्र के अन्य तान्त्रिक प्रकार

'मनन और त्राण' की संयुक्त प्रक्रिया के आधार पर 'मन्त्र' शब्द की रचना हुई है। साधकों ने जिन मन्त्रों का जिस रूप में साधन किया और अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति की, उसी को आगे चलकर आचार्यों ने शास्त्रों में संगृहीत कर दिया और वह भावी पीढ़ी के लिए उत्तम साधना

---

१. 'सिंहसिद्धान्तसिन्धु' आदि तन्त्र ग्रन्थों में पूरी वर्णमाला के अक्षरों की अलग-अलग औषधियां वर्णित हैं तथा उनके विभिन्न रूप से प्रयोग का निर्देश भी दिया गया है।

का मार्ग बन गया। महामृत्युञ्जय मन्त्र भी इस दृष्टि से विभिन्न प्रकारों में साधना का मुख्य लक्ष्य रहा है।

किसी भी साधना में शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता अत्यन्त आवश्यक होती है। इसीलिए कहा जाता है **'शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्'** शरीर धर्मसाधन का प्रथम अंग है। और स्वस्थ शरीर के साथ ही मानसिक स्वस्थता रहने से बुद्धि में स्फूर्ति आती है—अतः **स्वस्थे चित्ते बुद्धयः संस्फुरन्ति'** यह वाक्य इसी का निर्देश करता है।

मन्त्र-जप के लिए मनन-कर्ता की तैयारी का बड़ा महत्त्व है। साधक को सर्वप्रथम स्थूलोपासना करनी पड़ती है तथा जब वह धीरे-धीरे स्थिर चित्त होकर ध्यानैकतानता-पूर्वक जप-संयम को साध लेता है तो उसके लिये सूक्ष्म-साधना के द्वार खुलने लगते हैं। तब सूक्ष्म बीजमन्त्रात्मक जप की पात्रता प्राप्त हो जाती है, और इस दृष्टि से वह जिन मन्त्रों का जप करता है वे बीजमन्त्र-गर्भित मन्त्र होते हैं। इस क्रम से और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म-प्रक्रिया में कुछ और सूक्ष्मता लाई जाती है। इस दृष्टि से महामृत्युञ्जयमन्त्र के विविध प्रकार तन्त्रग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। जिनकी नामावली इस प्रकार है—

१. एकाक्षरी-मन्त्र
२. तीन अक्षरों का मन्त्र
३. चार अक्षरों का मन्त्र
४. नौ अक्षरों का मन्त्र
५. दश अक्षरों का मन्त्र
६. पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र
७. वैदिक त्र्यम्बक-मृत्युञ्जय-मन्त्र (३२ अक्षरात्मक)
८. (३३ ,, ,,)
९. व्याहृतित्रय सम्पुटित केवल मृत्युञ्जय-मन्त्र (४८ अक्षर)
(५० अक्षर)
१०. प्रणव, व्याहृतित्रिबीज और व्याहृतित्रयसम्पुटित मृत्यु-सञ्जीवनी मन्त्र (५२ अक्षर)

११. चतुर्दश प्रणव त्रिबीज व्याहृतित्रयसम्पुटित ६२ अक्षरात्मक महामृत्युञ्जय-मन्त्र

१२. शुक्रोपासिता मृतसञ्जीवनी विद्या

१३. बगलामुखी भैरव मृत्युञ्जयमन्त्र

१४. वेदोक्त (दोनों) त्र्यम्बक-मन्त्र

१५. अन्य मन्त्र सहित मृत्युञ्जय-मन्त्र "शताक्षरा गायत्री"

१६-२०. अन्य ५ प्रकार (विभिन्न कार्य साधक)

२१. अनुष्टुप् त्रय आयुष्कर मृत्युञ्जय-मन्त्र

२२. बृहद् महामृत्युञ्जय-माला मन्त्र

२३. सहस्राक्षरी मृत्युञ्जय-मन्त्र

२४. पौराणिक ,, ,,

२५. विलोमाक्षर ,, ,,

२६. साङ्गोपाङ्ग ,, ,,

(भैरवी, प्रथमपाद, मूलमन्त्र, शिवपञ्चाक्षरी मन्त्र सहित)

२७. अमृतेश्वरी-मन्त्र आदि।

२८. दुर्गा सप्तशती के अनुसार श्रीदुर्गामृत्युञ्जय-मन्त्र

२९. मृत्युञ्जयमन्त्र सम्पुटित व्यासमन्त्र

३०. धर्मराजमन्त्र

इस प्रकार यह मन्त्र इतना अधिक व्यापक है कि सभी तन्त्रों में इसकी चर्चा की गई है। नये-नये प्रयोग दिये गये हैं तथा हवन, तर्पण, मार्जन, भस्म-जलादि अभिमन्त्रण आदि अनेक तान्त्रिक प्रक्रियाओं का निर्देश किया गया है।

● ध्यान का महत्त्व

किसी भी देवता के मन्त्रजप से पूर्व उस देवता का अपनी कामना के अनुसार फलप्रद ध्यान किया जाता है। आगमशास्त्र में जपने योग्य मन्त्र के देवता के ध्यान का विधान है। किसी भी देवता को अपने संकल्प के अनुसार परिणत कर उसके भिन्न-भिन्न वर्ण, भिन्न-भिन्न आयुध आदि

से ध्यान करने पर वह देवता संकल्प के अनुरूप तत्तत् फलों को देता है। मृत्युञ्जय-विद्या का ध्यान इस प्रकार है—

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्त-करद्वयामृतधरं कैलाससंस्थं शिवं,
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

इसमें भगवान् शिव के छह हाथ हैं तथा उनमें क्रमश: दो में जलघट लिये हुए हैं और उनसे अपने सिर पर अभिषेक कर रहे हैं। दोनों हाथों में मृग और अक्षमाला धारण किये हुए हैं तथा अन्य दो हाथों में जलपूरित घट लेकर अपनी गोद में उन्हें रखा है।

ऐसे ही अन्य ध्यान के पद्य **'मृत्युञ्जय शिव का शास्त्रोक्त स्वरूप'** शीर्षक कथन में दिये हैं उनसे भी ज्ञान हो सकता है। मुख्यरूप से देवता के आयुधों में परिवर्तन होने से ही काल-परिवर्तन-मूलक, कार्य-विशेष-साधना-मूलक एवं सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या, भासा आदि साधना में उपादिष्ट विषयात्मक तथा भिन्न-भिन्न कर्मों के सिद्धि-कारक स्वरूपों का ध्यान होता है। आजकल इस सम्वन्ध में विशेष लक्ष्य न रखने से भी सफलता में विलम्व होता है, यह विचारणीय है।

● रोगनिवारण के लिये उपासना की आवश्यकता

आयुर्वेद-शास्त्र के आचार्यों ने 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश' इन पांच तत्त्वों में से किसी भी एक के कुपित हो जाने पर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति का विवरण दिया है। इन तत्त्वों के कोप से उत्पन्न होने वाले विकारों का उल्लेख चरक तथा सुश्रुत ने वहुत ही विस्तार से किया है। साथ ही वहीं उक्त आचार्य ने औषधिरूप लौकिक उपायों के अतिरिक्त रोगों के निवारणार्थ देवताओं की उपासना का भी मुख्यरूप से निर्देश किया है। किस रोग की निवृत्ति के लिए किस देवता की उपासना की जाए? यह विषय वहुत गम्भीर है तथा विभिन्न ग्रन्थों में आचार्यों ने इन बातों का विस्तार से विचार भी किया है। पुराणों में ऐसे हजारों दृष्टान्त--उदाहरण भी प्राप्त होते हैं कि किस रोग की

निवृत्ति के लिए किसने कौन-सी उपासना की ? जैसे वायु-प्रकोप की शान्ति के लिए सूर्य की आराधना अथवा कुष्ठरोग की निवृत्ति के लिए सूर्य-वायुतत्त्वाधिपति की आराधना। जल-सम्बन्धी प्रकोप की निवृत्ति के लिए गणपति की उपासना। इस सम्बन्ध में यह पद्य स्मरणीय है—

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

अर्थात्—आकाशतत्त्व के स्वामी विष्णु हैं, अग्नि-तेजस् तत्त्व की स्वामिनी भगवती दुर्गा है, वायुतत्त्व के स्वामी सूर्य हैं, पृथ्वीतत्त्व के अधिपति शिव हैं तथा जलतत्त्व के स्वामो गणपति हैं।

इसी आधार पर पांचों तत्त्वों के कोप से उत्पन्न रोगों की शान्ति के लिए 'तत्त्वाधिपति' की उपासना का आदेश है।

'मन्त्रयोग-संहिता' में भी लिखा है कि—

मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मको बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तत्त्ववित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

अर्थात्—मानवों की प्रकृति पांच प्रकार की है, जिससे पञ्चभूतात्मक सृष्टि का निरूपण होता है। यद्यपि प्राणियों की प्रकृति प्रकृति के वशीभूत होने से भिन्न-भिन्न है तथापि पञ्च तत्त्वों के अनुसार प्रत्येक तत्त्व का विचार करके विधिपूर्वक उपासना के अधिकार का तत्त्वज्ञ ने वर्णन किया है। इस दृष्टि से भी सब प्रकार के रोगों की शान्ति के लिए देवोपासना का विधान स्पष्ट है। तभी तो अपने कुष्ठरोग की निवृत्ति के लिए मयूरकवि ने 'सूर्यशतक' का निर्माण कर सूर्योपासना से अपने रोग की निवृत्ति की। बाणभट्ट ने 'चण्डीशतक' की रचना करके भगवती चण्डिका की उपासना से अपने शाप का निवर्तन किया। महात्मा तुलसीदास जी ने 'हनुमान-बाहुक' की रचना से हनुमदुपासना करके बाहु

में उत्पन्न रोग की निवृत्ति की। इन्हीं का 'हनुमान-चालीसा'—'नासै रोग मिटै सब पीरा' की घोषणा से उपासना के लिए ही तो प्रेरित करता है !

वेदों से आरम्भ कर आधुनिक साहित्य तक के विशाल वाङ्मय में विभिन्न रोगों से निवृत्ति पाने के लिए कई विद्याएं—मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, अभिषेक, भस्म, औषधि, तप, जप आदि के विधान दिये हैं। इन सब में उपासना का महत्त्व ही सर्वोपरि है। उपासना से मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के रोगों की चिकित्सा हो जाती है। मानसिक रोगों में—काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, राग, अनुराग, संकीर्णता, कपट, प्रतारणा, प्रमाद, दुराग्रह और आलस्य आदि आते हैं। कोषकारों ने इन रोगों को 'आधि' शब्द से बोधित किया है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ—'वाग्भटसंहिता में लिखा है कि—

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ ।
धी-धैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधं परम् ॥

अर्थात्—रजोगुण और तमोगुण ये दो मन के दोष हैं। बुद्धि, धैर्य तथा आत्मज्ञान ये तीन मन के रोगों की सर्वोत्तम दवा है। जिस प्रकार शारीरिक रोगों की निवृत्ति के लिए उपासना' आवश्यक है, इसी प्रकार मानसिक रोगों को मिटाने के लिए भी उपासना परम उपयोगी समझकर 'मन्त्रजप' करना चाहिए। महामृत्युञ्जय-मन्त्र इन सब रोगों से छुटकारा दिलाने में पूर्ण उपयोगी एवं सिद्धमन्त्र है। इस मन्त्र की उपासना से न केवल मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है अपितु सांसारिक प्राणियों को सभी प्रकार के संकटों से मुक्ति भी प्राप्त होती है।

शुक्राचार्यजी द्वारा वर्णित

महामृत्युञ्जय-महिमा

त्र्यम्बकं यजामहे च, त्रैलोक्यपितरं प्रभुम् ।
त्रिमण्डलस्य पितरं, त्रिगुणस्य महेश्वरम् ॥२२॥
त्रितत्त्वस्य त्रिवह्नेश्च, त्रिधाभूतस्य सर्वतः ।
त्रिदिवस्य त्रिबाहोश्च, त्रिधाभूतस्य सर्वतः ॥२३॥

त्रिदेवस्य महादेवः, सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
सर्वभुतेषु सर्वत्र, त्रिगुणेषु कृतो यथा ॥२४॥
इन्द्रियेषु तथान्यत्र, देवेषु च गणेषु च।
पुष्पे सुगन्धिवत्सूरः, सुगन्धिरमरेश्वरः ॥२५॥
पुष्टिश्च प्रकृतेर्यस्मात्, पुरुषाद् वै द्विजोत्तम।
महदादिविशेषाणां विकल्पश्चापि सुव्रत ॥२६॥
विष्णोः पितामहस्यापि, मुनीनां च महामुने।
इन्द्रियश्चैव देवानां, तस्माद् वै पुष्टिवर्धनः ॥२७॥
तं देवममृतं रुद्रं, कर्मणा तपसाऽपि वा।
स्वाध्यायेन च योगेन, ध्यानेन च प्रजायते ॥२८॥
सत्येनान्येन सूक्ष्मायान्मृत्युपाशाद् भव स्वयम्।
बन्धमोक्षकरो यस्मादुर्वारुकमिव प्रभुः ॥२९॥
मृतसञ्जीवनीमन्त्रो, मम सर्वोत्तमः स्मृतः।
एवं जपपरः प्रीत्या, नियमेन शिवं स्मरन् ॥३०॥
जप्त्वा हुत्वाऽभिमन्त्र्यैवं, जलं पिब दिवानिशम्।
शिवस्य सन्निधौ ध्यात्वा नास्ति मृत्युभयं क्वचित् ॥३१॥

—शिवमहापुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, आ० ६८

उपर्युक्त पद्यों में भगवान् महामृत्युञ्जय के वेदोक्त मन्त्र का व्याख्यान करते हुए महर्षि दधीचि को श्रीशुक्राचार्य ने बतलाया है कि—वह भगवान् त्र्यम्बक तीन लोक का स्वामी, तीन मण्डलों का पिता, त्रिगुण, तीन-तीन तत्त्व अग्नि, भूत, स्वर्ग तथा देवों में महान् है। वह सुगन्धि से सर्वत्र व्याप्त है। प्रकृति और पुरुष से महदादि तत्त्वों के समान ही वह पुष्टिवर्धक है। वह विष्णु, ब्रह्मा, मुनि आदि का पुष्टिकारक है। अमृतमय है। स्वाध्याय, योग, ध्यान, सत्य एवं अन्य उपासनाओं से वह प्रसन्न होकर मृत्युपाश से मुक्त बनाता है। ककड़ी के फल के समान वह बन्धन से मुक्ति दिलानेवाला है। अतः "हे दधीचि ! तुम इस मृतसञ्जीवनी मन्त्र का जप करके। निर्भय वनो।" यह आगे दिये गये कथानक से आप जान सकेंगे इस उपदेश के अनुसार दधीचि महर्षि ने उपासना की और वे वज्रदेह बने।

महर्षि दधीचि द्वारा महामृत्युञ्जय उपासना

महामृत्युञ्जय मन्त्र के प्रभाव से महर्षि दधीचि का वज्रास्थि, अवध्य और अदीन बनना

शिवपुराणगत रुद्रसंहिता के सतीखण्ड अ० ३८-३९ में महामृत्युञ्जय मन्त्र की महिमा से मण्डित महर्षि दधीचि और राजा क्षुव का एक रोचक आख्यान आता है। वह इस प्रकार है—

ऋषिपुत्र दधीचि और राजकुमार क्षुव दोनों एक आश्रम में पढ़ते थे। दोनों में अच्छी मित्रता हो गई। जब आश्रम से वे गृहस्थ आश्रम के लिए विदा हुए तो क्षुव ने कहा कि—'मैं राज्य सिंहासन पर बैठ जाऊं तब आपको कोई आवश्यकता हो तो मेरे पास आना, मैं पूर्ति करूंगा।' यह सुनकर दधीचि ने कहा कि—'ऋषियों को क्या आवश्यकता होगी। हम तो राजाओं को भी देने की शक्ति रखते हैं।' इससे राजकुमार कुछ खिन्न तो हुआ किन्तु मित्रतावश कुछ नहीं बोला।

जब वह राजसिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने ऋषिपुत्र को सन्देश भेजा। दधीचि भी आशीर्वाद देने गये। जब क्षुव ने कुछ देना चाहा तो फिर वे ही वाक्य कहे। धीरे-धीरे विवाद बढ़ा, एक-दूसरे को श्रेष्ठ बताने लगे और एक-दूसरे की हीनता भी दिखलाने लगे। विवाद बढ़ गया। दधीचि ने अपना अपमान होते देखकर क्रोध से राजा के सिर पर मुष्टि-प्रहार किया। उसके विपरीत राजा क्षुव ने दधीचि के वक्ष पर वज्र का प्रहार किया। ऋषि हताहत होकर गिर पड़े। जैसे-तैसे आश्रम आये और अपनी हड्डियों के टूट जाने से दुःखी होकर शुक्राचार्य का स्मरण किया। उनके आने पर अपनी स्वस्थता की प्रार्थना की। उन्होंने मृत्युञ्जय-मन्त्र के बल से दधीचि को स्वस्थ किया और साथ ही कृपा करके महामृत्युञ्जय-मन्त्र का विधिवत् उपदेश भी दिया।

दधीचि ने वन में जाकर दीर्घकाल तक मन्त्रजप करके भगवान् शिव से '१—अपने शरीर को वज्र के समान दृढ़ बनाने, २—कभी किसी के द्वारा वध न किये जाने और ३—दीन न रहने का (वज्रास्थि, अवध्य एवं अदीन होने का) वर प्राप्त किया। तदनन्तर मुनि पुनः क्षुवराज के यहां गये और अपने पैर से उसके सिर पर प्रहार किया। क्रुद्ध राजा ने

वज्र से उनके वक्ष पर प्रहार किया। किन्तु ऋषि का कुछ भी नहीं विगड़ा। यह देख राजा विस्मित हुआ और अपने बल को बढ़ाकर दधीचि को परास्त करने के लिए तप करने चला गया। तप से विष्णु प्रसन्न हुए और वर मांगने को कहा, तव राजा ने दधीचि के वध का वर मांगा किन्तु विष्णु ने कहा कि उसने महामृत्युञ्जय-मन्त्र के प्रभाव से वज्रदेह, अवध्य और अदीन होने का वर शिवजी से प्राप्त कर लिया है, अत: मैं तुम्हें ऐसा वर नहीं दे सकता। साथ ही यह भी कहा कि—हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण सदा निर्भय हैं, विशेषत: शिवोपासना से उनका कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता। किन्तु तुम मेरे भक्त हो इसलिये मैं दधीचि को परास्त करने के लिए कुछ उपाय करता हूं। ऐसा कहकर विष्णु ब्राह्मण का रूप धारण कर मुनि दधीचि के आश्रम में गये और उन्हें प्रसन्न करके प्रार्थना की कि आप मुझे एक वरदान दीजिये। मुनि ने तपोवल से जान लिया कि ये भगवान् विष्णु हैं और क्षुव की सहायता के लिये माया करके मुझ से वरदान प्राप्त करना चाहते हैं। तथापि बोले—कहो, क्या चाहते हो ? विष्णु ने कहा कि 'तुम एक बार अपने मुँह से यह कह दो कि 'मैं डरता हूं'। किन्तु मुनि ने कहा—मैं मृत्युञ्जय शिव की कृपा से सदा निर्भय हूं, मुझे किसी से कोई भय नहीं है।

विष्णु इससे क्रुद्ध हो गये और अपने चक्र से ऋषि पर प्रहार किया किन्तु वह भी निष्फल हो गया। तव अन्य ब्रह्मास्त्रादि का प्रयोग करने के लिए विष्णु ने इन्द्रादि देवताओं को आज्ञा दी। उनके अस्त्रों से भी ऋषि का कुछ नहीं विगड़ा। दधीचि ने कुछ कुशाओं को अभिमन्त्रित कर उन पर छोड़ा। वे ही त्रिशूल बनकर देवताओं को त्रस्त करने लगीं। सभी आयुधों ने त्रिशूल को प्रणाम किया और देवता भी भाग खड़े हुए।

तव विष्णु ने अपना विराट्स्वरूप बनाया। मुनि ने उसे देखकर कहा कि हे विष्णु ! आप अपनी गाथा छोड़ दीजिए। भगवान् शिव के प्रभाव से आप मेरे शरीर को देखें। ऐसा कहकर दधीचि ने भी विराट् स्वरूप दिखलाया। विष्णु यह देखकर हतप्रभ हो गये। तभी वहां क्षुव राजा आया और मृत्युञ्जय-शिव के प्रभाव से विष्णु को प्रभावहीन देखकर उसने कहा—भगवन् ! आप शान्त हो जाएं। मैंने मृत्युञ्जय-

शिव का प्रभाव जान लिया है। यह कहकर उसने दधीचि को प्रणाम किया और अपने द्वारा अभिमानवश किये गये प्रहारादि के लिए क्षमा-याचना की।

इस प्रकार महामृत्युञ्जय मन्त्र के जप का प्रभाव बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। बाद में इन्द्र के द्वारा उनकी हड्डियों के मांगने पर दधीचि ने विश्वकल्याण के लिए अपनी अस्थियों का दान किया था और उन्हीं को अस्त्र बनाकर इन्द्र ने राक्षसराज का नाश किया था। यह भी प्रसिद्ध है।

ऐसे परम हितकारी भगवान् महामृत्युञ्जय की आराधना करना अपने जीवन को अमर बनाना ही है।

मन्त्रजप करने के सामान्य नियम

१. जप के लिए जहां तक सम्भव हो एक स्थान निश्चित कर लें। उस स्थान पर जितनी अधिक शुद्धता और पवित्रता रहेगी, उतना ही जप में अधिक मन लगेगा।

२. वातावरण शान्तिपूर्ण हो, इसके लिए प्रातःकाल का समय उत्तम माना गया है। ब्राह्ममुहूर्त ४ से ६ बजे तक समय निभा सकें तो बहुत अच्छा रहेगा। समय की नियमितता भी आवश्यक है।

शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर धुले हुए वस्त्र पहनें। कम्बल अथवा ऊन का आसन बिछा लें। सामने शिव जी का चित्र हो, तो उत्तम है। अथवा अपने इष्टदेव का चित्र सामने रखकर उनके ही अमृतरूप का ध्यान करें। जप के प्रारम्भ में ध्यान और मानसिक प्रार्थना कर लेनी चाहिए।

४. जप की संख्या नियत कर लें। प्रतिदिन नियमित संख्या से जप करना शास्त्रविहित है। स्वयं को एक अनुशासन बद्ध रखकर उपासना करने से आत्मानुशासन बढ़ता है और विघ्नों को सहन करने की शक्ति आती है।

५. जप-संख्या जानने के लिए माला का प्रयोग किया जाता है। जहां तक हो रुद्राक्ष की माला प्रयोग में लाएं। यदि माला नहीं हो तो करमाला अथवा किसी अन्य माला का प्रयोग करें।

६. जप के लिए निश्चित मन्त्र का प्रयोग करें। यथा-सम्भव मन्त्रार्थ

का चिन्तन भी साथ-साथ करना चाहिए। जब तक मन्त्र कण्ठस्थ न हो, उसका उच्चारण शुद्ध न हो, तब तक तो लिखा हुआ कागज अथवा पुस्तक सामने रखकर बोलें, बाद में मन में ही स्मरण करें। गुप्त रूप से जप करना लाभप्रद है।

७. जप के समय मन को स्थिर बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। व्यर्थ के विचारों का त्याग करें। भगवान् के स्वरूप और मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करना ही उत्तम है।

८. माला से खट्खट् की आवाज न आये। एक-एक मन्त्र पूरा होने पर एक-एक मनका फिरायें। मन्त्र बोलते समय ओठों को हिलाना या अन्य शब्द करना अनुचित है।

९. जप पूरा होने के पश्चात् पुनः प्रभु का ध्यान करके 'श्रीमहा-मृत्युञ्जयदेवतार्पणमस्तु' कहकर जल छोड़ दें।

१०. आसन के नीचे भूमिवन्दना करके वहां की मिट्टी को मस्तक पर लगाने का भी विधान है।

उपासना का महत्त्व

* सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास से युक्त उपासना करने से हृदय में शान्ति की धारा तथा आत्मा में आनन्द की वृष्टि होती है।
* प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाएँ, जो शुभ तथा कल्याण करनेवाली हों, शीघ्र पूर्ण हो जाती हैं।
* अन्तःकरण को मलिन बनानेवाली तथा स्वार्थ, असंकीर्णता एवं कुत्सित भावनाओं से छुटकारा मिलता है।
* काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष जैसी कुटिल वृत्तियों और मलिन वासनाओं से मुक्ति मिल जाती है।
* क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहंकार-शून्यता आदि शुभ भावनाएँ मनुष्य में विकसित होती हैं।
* शरीर स्वस्थ तथा परिपुष्ट, मन सूक्ष्म तथा उन्नत, आत्मा पवित्र तथा निर्मल हो जाती है।
* दुःखों के स्थान पर सुखों का आनन्द प्राप्त होता है और मनुष्य सब

समृद्धियों और सफलताओं के साथ परमात्मा के आशीर्वादों को प्राप्त करता है।

मृत्युञ्जयजपं नित्यं यः करोति दिने दिने।
तस्य रोगाः प्रणश्यन्ति दीर्घायुश्च प्रजायते ॥

जो प्रतिदिन महामृत्युञ्जय मन्त्र का जप करता है, उसके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं तथा वह दीर्घायु प्राप्त करता है।

रोग, संकट एवं मृत्यु से बचने के लिये अन्य मन्त्र

हमारे पूर्वाचार्यों ने मानव-स्वभाव की विविधता और उनकी शक्ति का अनुमान करके रोगादि से मुक्ति दिलाने के लिए अन्य बहुत से मन्त्र प्रदर्शित किये हैं। इन में प्रायः सभी उपास्य देवताओं के मन्त्र हैं जो हमारा सनातनधर्मी युग-युगों से जपता आया है। यह उचित भी है कि "जिस देवता में हमारी पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास है, वही हमारी समस्त कामनाओं को पूरी करने में समर्थ होता है" ऐसी दृढ़-निष्ठा से जितनी शीघ्रता से सफलता मिलती है, उतनी ढुल-मुल निष्ठा से नहीं। इसीलिए महामृत्युञ्जय के अतिरिक्त—गणपति, भैरव, शक्ति, विष्णु, धन्वन्तरि, हनुमान् आदि देवताओं के मन्त्र भी आयुष्कर, रोगहर तथा मृत्युनिवारण-सम्बन्धी प्राप्त होते हैं। हम ने ऐसे कुछ मन्त्रों का प्रयोग-विधान भी मृत्युञ्जय-मन्त्र-प्रयोगों के पश्चात् दिया है।

इसी प्रकार तन्त्र, यन्त्र, स्तोत्र और प्राणायाम के प्रयोग भी विविध प्रकार के प्राप्त होते हैं, जिन्हें विस्तार अधिक हो जाने के भय से नहीं दिया गया है। किन्तु इसके अतिरिक्त हम ने यह अवश्य बताने का प्रयास किया है कि जिसकी जैसी रुचि हो उसके अनुसार उसकी इच्छा को पूर्ति करने वाली सामग्री इस ग्रन्थ में मिल जाए।

इस दृष्टि से यहां मन्त्रों के अतिरिक्त यन्त्र, तन्त्र, स्तोत्र और योग से सम्बन्धित साहित्य भी सङ्कलित किया गया है। साथ ही जन्मदिन मनाने के समय जिन-जिन चिरजीवी महर्षियों की पूजा होती है और जिन देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करके स्वयं को नीरोग तथा दीर्घ-जीवी बनाया जा सकता है। उसका भी इस ग्रन्थ में समावेश कर दिया है।

विशेष-स्मरणीय

स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर तथा दीर्घायु बनने के लिए यह स्मरणीय है कि मनुष्य की प्रकृति में विभिन्नता होने पर भी उनमें आन्तरिक कुछ समानता है और इसी कारण एक ही समय में सब को एक ही प्रकार की व्याधियां भी उन्हें घेरे रहती हैं। ऐसी व्याधियां शारीरिक न होकर मानसिक होती हैं। इनके होने से मानव-स्वभाव में विकार आ जाता है और स्वजन, परिजन तथा परजन सभी में एक जैसे भाव बनने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि—अधर्मभावना, असद् आचरण, लोभ, क्रोध, द्वेष, अभिमान, पूज्यजनों का अनादर, देवता और गुरुओं के प्रति अश्रद्धा, पाप प्रवृत्ति, विवेकहीनता आदि रोग मन में घर कर लेते हैं। समानवृत्ति के लोगों से ही अधिक मेल-जोल बनता है, अच्छे लोगों की संगति से मन दूर भागता है और इन सबके कारण मानसिक अशान्ति, निद्रा का अभाव असन्तोष एवं दैवी विपदाओं का प्रकोप बना ही रहता है। ऐसे रोगों से बचने के लिए महर्षि आत्रेय ने निम्नलिखित उपाय बतलाये हैं—

> सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
> सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
> हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
> सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
> शङ्कया धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
> धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसम्मतैः॥
> इत्येतद् भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।
> येषां न नियतो मृत्युस्तस्मिन् काले सुदारुणे॥

सत्य आचरण, सब प्राणियों के प्रति दया, दान, बलि, देवताओं की पूजा, सदाचार का पालन, आत्मरक्षा, पवित्र स्थानों पर निवास, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचारियों का सामीप्य, धर्मशास्त्र तथा जितात्मा महात्माओं की आज्ञा का पालन और वृद्ध-गुरुजन तथा सात्त्विक लोगों का सहवास—ये बड़े से बड़े रोगों से निवृत्ति दिखाने के लिए उत्तम दवा हैं। इस से अकालमृत्यु का निवारण होता है। अतः प्रत्येक आस्तिक मनुष्य को सब से पहले

उपर्युक्त निर्देशों के अनुसार अपने जीवन को ढालने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

यह आप स्वयं करें

किसी भी शुभ कार्य को करने के लिए हमें किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो अपना कार्य स्वयं करना ही सबसे उत्तम माना गया है। दान की महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि—'जिस हाथ से दान करो, उसे ऐसा गुप्त रखो कि दूसरा हाथ भी नहीं जान पाये'—इस कथन में यह रहस्य छिपा है कि **"अच्छे कर्म स्वयं ही करने चाहिये।"**

हमारे शास्त्रों में दान-पुण्य, पाठ-पूजा, यज्ञ-याग, स्तुति-प्रार्थना जैसे कार्यों के लिए स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि—'आत्मकल्याण की कामना वाला मनुष्य इन कार्यों को स्वयं करे। हां, जब किसी की शारीरिक, बौद्धिक अथवा मानसिक स्थिति ठीक न हो, तो किसी प्रतिनिधि के द्वारा ऐसे कार्य करवाये जा सकते हैं।'

इन प्रतिनिधियों में भी सब से पहले जो निकटतम सम्बन्धी हो उस से यह कार्य—जपादि करवाना चाहिए। यदि वैसी सुविधा न हो तो किसी स्नान-सन्ध्याशील, पवित्र, सदाचारी, मन्त्रज्ञ ब्राह्मण द्वारा ऐसे जप-पूजादि कर्म करवाने चाहिए। उस समय अपना मनोभाव ऐसा बनाना चाहिए कि 'प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त व्यक्ति मैं स्वयं ही हूं, अतः जो मुझे अच्छा लगता है, जो मेरे लिए अनुकूल है, वही प्रतिनिधि के लिए भी सुविधा प्रदान करूं।'

आजकल प्रत्येक मनुष्य का जीवन एक मशीन जैसा बन गया है। जब देखो तब वह किसी न किसी उधेड़-बुन में उलझा ही रहता है। घर, दफ्तर, बाजार और मौज-शौक के साधनों में लगा हुआ मानव भजन-स्मरण कब करे? पूजा-उपासना के लिए समय ही नहीं मिलता। बहुतों की तो ऐसी स्थिति होती है कि सामान्य बीमार रहने पर दवा लेने तक का समय नहीं मिलता।

लोककल्याण के लिए आजकल और बहुत पुराने समय से हमारे

हितचिन्तकों ने प्राकृतिक और वैज्ञानिक उपायों को प्रदर्शित किया है। पग-पग पर उन्होंने सावधान किया है, डग-डग पर आवश्यक कर्तव्यों का उपदेश दिया है। किन्तु उन पर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। जानते हुए भी श्रद्धा और विश्वासों के अभाव में उन्हें करना ही नहीं चाहते।

किन्तु यह अच्छा नहीं है। **"आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।"** —अर्थात् स्त्री-परिवार और धन-सम्पत्ति से भी पहले सदा अपने आप की रक्षा करनी चाहिए। इस सूक्ति को मूलमन्त्र मानकर अपने स्वास्थ्य और मनोवल की रक्षा में सदा जागरूक रहना प्रत्येक मानव का पहला एवम् अनिवार्य कर्तव्य है। और यह सब तभी हो सकता है जब कि **'अपना कार्य स्वयं किया जाए।'**

आप मन में सोचेंगे कि इतने विस्तार वाले कर्मकाण्ड तथा उससे सम्वन्धित संस्कृतभाषा के मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कैसे हो सकेगा ? नित्य इन नियमों का निर्वाह कैसे कर सकूंगा ? क्या मैं यह कर पाऊँगा ? क्या मुझे यह सब करने का अधिकार है ? तथा ऐसे अन्य कितने ही प्रश्न आपके मन को झकझोर देंगे, पर इन सब का उत्तर एकमात्र यही है कि— **'हां' यह सब आप कर सकते हैं और यह आपको ही करना चाहिए।**

अपनी पात्रता और उत्साह के अनुसार शनै शनैः मार्ग पर चलने-वाला एक दिन शिखर पर पहुंच जाता है। साधना के मार्ग में भी यही वात मान्य है। पौराणिक एवं लौकिक आख्यानों से स्पष्ट है कि पहले छोटे से छोटे मन्त्र का केवल जप करे। जप-सम्बन्धी नियमों का पालन भी अपनी शक्ति के अनुसार करता रहे। जैसे-जैसे पात्रता का विकास होगा स्वयम् अनुष्ठान करने की शक्ति का उदय हो जायेगा। ज्ञान की वृद्धि होने लगेगी और उपासना के द्वार खुल जाएंगे।

भजन-स्मरण के लिए आन्तरिक शुद्धि और वाह्य शुद्धि दोनों ही आवश्यक हैं। ज्ञान न हो तो 'मरा-मरा' के जप से भी सिद्धि मिल जाती है और ज्ञान हो तो प्रातः से सायंकाल तक कर्मकाण्ड के विविध सोपानों का पालन करते हुए विधि-विधानपूर्वक जपानुष्ठान करने पर ही सफ-लता प्राप्त होती है। इसलिए शंका-कुशंका न करके जिज्ञासाभाव से विषय को समझें तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्र-जप करें।

गुरु मन्त्र और देवता को एकरूप मानकर स्वयं को उनके साथ मिलाकर एकाकार बनना ही मन्त्रजप का मुख्य लक्ष्य है। धीरे-धीरे आत्म-ज्ञान की ओर अभिमुख होने से विचारो में स्थिरता, भावनाओं में पवित्रता तथा कर्तव्यों में दृढ़ता आती है। मन्त्र की अपूर्व शक्ति का स्फुरण होता है, चेतना-शक्ति का विकास होता है और सात्त्विक भावों का उदय होकर अमृत-निष्ठा बढ़ती है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' यह आत्मज्ञान बलहीन व्यक्ति के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार मनुष्य को अपने कार्य को सफल बनाने के लिए कभी शिथिल, उदास, शंकाशील, हतोत्साह या चञ्चल नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर कार्य की सफलता तो कठिन होती ही है, साथ ही अनेक विघ्न भी उसे आ घेरते हैं। अतः अपने ज्ञान के अनुसार स्वयं भगवद् भजन में लग जाए। विद्वानों साधकों और सत्पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करे। सत्सङ्ग के द्वारा बुद्धि को निर्मल बनाये और आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो।

मृत्युञ्जयस्य मन्त्रं वै जपते यदि मानुषः।
कोटिबर्षशतं स्थित्या लीनो भवति ब्रह्मणि ॥४७।२४०॥

—रुद्रयामल

—×—

प्रयोग-विभाग

सिद्ध मन्त्रामृत

मनोबल-वर्धक शिव-सङ्कल्प-मन्त्र

सर्वलौकैक-शरणं मृत्युरोगादिनाशकम्।
अभयप्रदमीशानं देवं मृत्युञ्जयं भजे ॥

किसी भी शुभ कार्य को करने से पूर्व मनुष्य का मनोबल तथा आत्म-बल सुदृढ़ होने चाहिए। मन की शिथिलता से उत्साह की कमी रहती है, अतः कार्य करने पर भी उस में मन नहीं लगता। बार-बार मन चञ्चल होकर भिन्न-भिन्न तरह की शंका-कुशंकाएँ पैदा करता है और उसके फलस्वरूप श्रद्धा स्थिर नहीं होती। श्रद्धा के अभाव में विश्वास तो जमेगा ही कैसे ? जब कि श्रद्धा और विश्वास ही भवानीशङ्कर[1] रूप हैं जिनकी कृपा से मानव की जीवनयात्रा निष्कण्टकरूप से आगे बढ़ती रहती है।

यही कारण है कि वैदिक ऋषियों ने मनोबल को बढ़ाने के लिए 'शिवसङ्कल्प' के मन्त्रों को प्रत्यक्ष किया और हमारे लिये उन को प्रस्तुत किया। **'यजुर्वेद संहिता'** में **'शिव-सङ्कल्प-सूक्त'** के रूप में तथा **'तैत्तिरीय ब्राह्मण'** में **'अमृत-सूक्त'** का संग्रह हुआ है। इन सूक्तों का प्रतिदिन पाठ करके अर्थ की भावना के अनुरूप स्वयं को मानने से मनो-बल और आत्मबल की वृद्धि होती है। इन्हों के प्रभाव से सत्कर्मों में रुचि, देवता, गुरु तथा वृद्धजनों के प्रति श्रद्धा जागृत होकर वह स्थिर बनती है। **'मैं अमृतरूप हूं'** यह विश्वास हो जाने पर ही किसी भी कार्य को करने की इच्छा होती है और उस में पूर्ण सफलता प्राप्त करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अतः आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले प्रत्येक मानव को इन दोनों सूक्तों का प्रतिदिन प्रायःकाल बिस्तर से उठते ही पाठ करना चाहिये। ये सूक्त इस प्रकार हैं—

---

१. गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—
भवानी-शङ्करौ वन्दे श्रद्धा-विश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥

शिवसङ्कल्प-सूक्त

ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥१॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥

यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते, तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६॥

इन छह मन्त्रों में यह प्रार्थना की गई है कि—

जो जागने पर दूर गत, अतीत, अनागत आदि को ग्रहण करनेवाला है तथा सोने पर पास आ जाता है, जो ज्योतियों में एक ज्योतिरूप है वह मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला बने ॥१॥ मेधावी पुरुष यज्ञ में जिस मन से हविष्यादि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर कर्म करते हैं। जो आत्मरूप है तथा जो प्राणिमात्र के शरीर में स्थित है, ऐसा मेरा मन शान्त-सङ्कल्प वाला बने ॥२॥ जो मन विशेष रूप से ज्ञान का जनक है, जो चित्त को उत्तम ज्ञान देता है, जो धैर्य रूप है, जो प्राणियों के अन्तर्हृदय में विराजमान होकर सभी इन्द्रियों को प्रकाशित करता है तथा जिसके बिना कोई कर्म सम्पन्न नहीं किया जाता, ऐसा मेरा मन शिवसङ्कल्प-शाली बने ॥३॥ जिस मन के द्वारा भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् काल का ज्ञान शाश्वतरूप से प्राप्त है, जिससे अग्निष्टोमादि यज्ञों का विस्तार किया जाता है, ऐसा मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला बने ॥४॥ जिस मन में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जिस प्रकार

रथचक्र की नाभि में आरे स्थित हैं तथा जिस मन में सम्पूर्ण ज्ञान वस्त्र में तन्तुओं के समान ओत-प्रोत है ऐसा मेरा मन शिवसङ्कल्प वाला हो ॥५॥ जो मन उत्तम सारथि के द्वारा ले जाये गये घोड़ों के समान मनुष्यों को अपने नियन्त्रण में रखकर चलाता है; जो हृदय में स्थित है, जो जरा से रहित है और जो वेगशाली है, ऐसा मेरा मन शिवसङ्कल्प वाला बने ॥६॥ (—यजुर्वेद संहिता ३४वां अध्याय)

मन की महिमा अद्भुत है। जब भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया तो अर्जुन किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाया। वह 'क्या करे क्या न करे'? एक ओर परिवार का विनाश था तो दूसरी ओर कर्तव्य का पालन। ऐसी दुविधा में वह कह उठा था—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद् दृढम्।"
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥६/३४॥

हे कृष्ण ! यह मन बड़ा ही चञ्चल है, प्रमथन स्वभाव वाला है, तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है, अतः इस को वश में करना वायु की भांति अति-दुष्कर मानता हूं।

अतः पूजा और उपासना में मन को शिवसङ्कल्प वाला बनाने के लिए यह प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये।

आत्मबल-वर्धक अमृत-सूक्त मन्त्र

मानव के शरीर में और बाहर अपरिमेय दिव्य शक्ति का अमृत-सागर भरा हुआ है। विराट् शक्तियों का निवास हमारे शरीर में है। यह शरीर देवताओं की नगरी अयोध्या है—'देवानां पूरयोध्या' इसलिए इसे आधि-व्याधि से सर्वथा मुक्त रखने के लिए, अल्पता, जड़ता और मृत्यु से दूर रहने के लिए इस अमृत सूक्त का पाठ करना चाहिए।

अग्निर्मे वाचि श्रितः। वाग्घृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥१॥

वायुर्मे प्राणे श्रितः। प्राणो हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥२॥

सूर्यो मे चक्षुषि श्रितः। चक्षुर्हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥३॥

चन्द्रमा मे मनसि श्रितः। मनो हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥४॥

दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः। श्रोत्रं हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥५॥

आपो मे रेतसि श्रिताः। रेतः हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥६॥

पृथिवी मे शरीरे श्रिता। शरीरं हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥७॥

ओषधिर्वनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः। लोमानि हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥८॥

इन्द्रो मे बले श्रितः वलं हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥९॥

पर्जन्यो मे मूर्ध्नि श्रितः। मूर्धा हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥१०॥

ईशानो मे मन्यौ श्रितः। मन्युर्हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥११॥

आत्मा मे आत्मनि श्रितः। आत्मा हृदये।
हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि ॥१२॥

पुनर्म आत्मा पुनरायुरागात् पुनः प्राणः पुनराकृतमागात्।
वैश्वानरो रश्मिभिर्वावृधानः अन्तस्तिष्ठन्नमृतस्य गोपाः ॥१३॥

(तैत्तिरीयब्राह्मण)
३।१०।८

इन वैदिक-मन्त्रों में मानव-मात्र के आत्मवल को वढ़ाने की प्रेरणा दी गई है। क्रमशः इन मन्त्रों में कहा गया है कि—

मेरी वाणी में अग्नि विराजित है, वाणी हृदय में स्थित है, हृदय मुझ में है, मैं अमृत में स्थित हूं और अमृत ब्रह्म में स्थित है। इसी प्रकार वायु, सूर्य, चन्द्रमा, दिशाएँ, जल, पृथिवी, ओषधि, इन्द्र, बादल, ईशान, आत्मा आदि को भी क्रमशः प्राण, नेत्र, मन, श्रोत्र, वीर्य, शरीर, केश, वल, सिर, क्रोध और आत्मा में स्थित बतलाकर उन्हें हृदय में, हृदय को अपने में तथा स्वयं को अमृत में स्थित माना है और अमृत ब्रह्म में स्थित है। अतः 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वेदान्त सूत्र का प्रतिपादन करके सदा निर्भय, नीरोग तथा अमृतमय मानने और वनने की प्रार्थना की गई है।

इन सूक्तों का पाठ करने से 'आत्मबल' की वृद्धि होती है। यदि मानव के पास आत्मबल-उत्साह न हो, तो वह संसार में अपना कोई भी कार्य नहीं कर सकता। परिवार घर-बार एवं यह संसार उसके लिए व्यर्थ हो जाते हैं। अतः कहा गया है कि—उत्साह से सम्पन्न और आलस्य से रहित व्यक्ति को लक्ष्मी स्वयं प्राप्त होती है।

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः

इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि—

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

अर्थात्—बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं को अजर-अमर मानकर विद्या और धन का संग्रह करे तथा यमराज ने अभी मेरे बाल पकड़ रखे हैं, मैं अब मरने ही वाला हूं—यह सोचकर धर्म का आचरण करे। 'काल करे सो आज कर' इस युक्ति में भी यही सन्देश दिया गया है। यही सब ध्यान में रखकर सत्कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

● शारीरिक पुष्टि-कारक 'अप्रतिरथ-सूक्त' मन्त्र

शुक्ल यजुर्वेद--संहिता में 'अप्रतिरथ-सूक्त' के नाम से एक मन्त्र-समूह का ग्रथन हुआ है। वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने इस सूक्त के द्वारा अभिमन्त्रित भस्म को रात्रि में सूक्तपाठ करके अपने अंगों पर लगाने से दृढ़ एवं नीरोग शरीर बनने का उत्तम उपाय बताया है। यदि भस्म न

लगा सके तो जल को इस सूक्त से अभिमन्त्रित करके पीने से भी वही लाभ प्राप्त होने का निर्देश दिया है। अतः पाठकों की सुविधा के लिए इस सूक्त का मूल-पाठ यहां दे रहे हैं। पहले इस का शुद्ध उच्चारण सीख लें और वाद में प्रयोग करें।

अप्रतिरथ-सूक्त

ॐ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१॥

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा सयुध इन्द्रो गणेन।
सं सृष्टजित् सोमपा बाहू शर्द्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेना प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेद्ध्यविता रथानाम् ॥४॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्ररथमातिष्ठ गोवित् ॥५॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।
इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम् ॥६॥

अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्त्वनां मामकानां मनांसि।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उ देवा अवता हवेषु ॥११॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्पु शोकैरन्धेन। मित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥
—यजुर्वेदसंहिता १७/३३-४४ ॥

सक्षिप्त मृत्युञ्जय-शिवपूजन-पद्धति

पीठ पर भगवान् मृत्युञ्जय शिव की मूर्ति अथवा शिवलिङ्ग को विराजमान कर दोनों हाथ की अञ्जलि में पुष्प लेकर सूर्यमण्डल अथवा अपने हृदय में ध्यान करे—

(१) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

सद्योजातं प्रपद्यामि। भगवन्तं मृत्युञ्जयशिवम् आवाहयामि।

इतना बोलकर सूर्यमण्डल में अथवा अपने हृदय में स्थित इष्टदेव को एक दीप से दूसरे दीपक में जैसे ज्योति जलाई जाती है उसी प्रकार अपने हाथों में लिये पुष्पों में दाहिनी नासिका से श्वास के रूप में आये हुए मानकर वे पुष्प मूर्ति पर चढ़ा दें। तदनन्तर अन्य उपचारों से पूजा करें। पूजा की जो सामग्री न हो, उसके स्थान पर पुष्प अथवा अक्षत चढ़ाएं।

(२) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० सद्योजाताय वै नमो नमः।
(आसनं समर्पयामि।)

(३) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० भवे भवे नातिभवे भवस्व माम्।
(पाद्यं समर्पयामि।)

(४) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० भवोद्भवाय नमः।
(अर्घ्यं समर्पयामि।)

(५) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० वामदेवाय नमः।
(स्नानं समर्पयामि।)

(६) ॐ भवं देवं तर्पयामि । ॐ शर्वं देवं तर्पयामि ।
ॐ ईशानं देवं तर्पयामि । ॐ पशुपतिं देवं तर्पयामि ।
ॐ रुद्रं देवं तर्पयामि । ॐ उग्रं देवं तर्पयामि ।
ॐ भीमं देवं तर्पयामि । ॐ महान्तं देवं तर्पयामि ।[1]
ॐ मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिपीडितं कर्मबन्धनैः ।।
श्रीमहामृत्युञ्जयस्वरूपिणं साम्बशिवं तर्पयामि ।[2]
(तर्पणात्मकं विशिष्टस्नानं समर्पयामि)

(७) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० ज्येष्ठाय नमः ।
(आचमनीयं समर्पयामि)

(८) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः ।
(मधुपर्कं समर्पयामि ।)
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० कालाय नमः (गन्धं समर्पयामि ।)

(९) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः ।
(अक्षतान् पुष्पाणि च समर्पयामि ।)

(१०) त्र्यम्बकं यजामहे० सर्वभूतदमनाय नमः । (धूपं समर्पयामि ।)

(११) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० मनोन्मनाय नमः । (दीपं समर्पयामि ।)

(१२) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० भवोद्भवाय नमः ।
(नैवेद्यम्[3] आचमनीयं समर्पयामि ।)

(१३) तत आरार्तिक्यं, (१४) पुष्पाञ्जलिं (१५) नमस्कारं
(१६) पुष्पाञ्जलिं (च समर्प्य क्षमाप्रार्थनां कुर्यात् ।)

---

१. ये शिव की अष्ट मूर्तियों के नाम हैं ।

२. यहीं पंचामृत (दूध, दही, घृत, शहद, चीनी) से तथा गङ्गाजल आदि से स्नान और अभिषेक भी किया जाता है ।

३. नैवेद्य में जायफल का प्रयोग करना आवश्यक है । यह मृत्युञ्जय-शिव की प्रिय वस्तु है ।

'अनेन मृत्युञ्जय-शिवपूजनेन भगवान् साम्वसदाशिवः प्रीयताम्।' कहकर जल छोड़ें और ५ वार 'नमः शिवाय' वोलकर क्षमाप्रार्थना करें—

मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिपीडितं कर्मबन्धनैः॥

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर॥

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष महेश्वर॥

● सूचना

१. इस पूजा में महामृत्युञ्जय-मन्त्र का जो संक्षेप दिया है, उसे पूरा करके वोलें।
२. यदि किसी अन्य छोटे मन्त्र का जप करते हों; तो उस मन्त्र के स्थान पर वह छोटा मन्त्र वोलें तथा बाकी सब विधि इसी प्रकार करें।
३. यदि घर में मूर्ति न हो, तो भगवान् के चित्र अथवा मन्त्र पर भी इसी से पूजा कर सकते हैं।
४. यह विधि नित्यपूजा के लिए है, यदि पुरश्चरण अथवा कोई विशेष अनुष्ठान कर रहे हों तो विशेष पूजा करनी चाहिए तथा उसमें रुद्राष्टाध्यायी से अभिषेक भी करना चाहिये।

विशिष्ट मृत्युञ्जय-मन्त्र-प्रयोग

१. त्र्यक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्रप्रयोग

मृत्युञ्जयमन्त्रों में 'तीन अक्षरों वाले मन्त्र' का प्रयोग इस प्रकार है—

विनियोग—(आचमनी अथवा दाहिने हाथ में जल लेकर)—

अस्य श्रीत्र्यक्षरात्मकमृत्युञ्जयमन्त्रस्य कहोलऋषिर्गायत्री छन्दः, मृत्युञ्जयो महादेवो देवता, जूं वीजम् सः शक्तिः मम सर्वरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः।

(इतना बोले और जल छोड़ दे। तदनन्तर न्यास करे।)

ऋष्यादिन्यास—

ॐ कहोलऋषये नमः (शिरसि)। ॐ गायत्र्यै छन्दसे नमः (मुखे)। मृत्युञ्जय-महादेवदेवतायै नमः (हृदये)। ॐ जूं बीजाय नमः (गुह्ये)। ॐ सः नमः (पादयोः) ॐ कीलकाय नमः (नाभौ) विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

करन्यास और हृदयादिन्यास—

	पहली वार	दूसरी वार
ॐ सां	(अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः।)
ॐ सीं	(तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा।)
ॐ सूं	(मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्।)
ॐ सैं	(अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्।)
ॐ सौं	(कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।)
ॐ सः	(करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्।)

ध्यान—

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं।
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत् पाणिं हिमांशुप्रभम्॥
कोटीरेन्दुगलत् सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं।
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये॥

उपर्युक्त श्लोक बोलते हुए मन में ध्यान करे कि—'चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले, प्रसन्न मुख, दो कमलों के मध्य में विराजमान, चार हाथों में क्रमशः मुद्रा, पाश, मृग और अक्षमाला धारण किये हुए, चन्द्रमा के समान गौरवर्ण, मस्तक पर स्थित चन्द्रकला से गिरते हुए अमृत से समस्त शरीर जिसका आर्द्र हो रहा है, हार आदि आभूषणों से युक्त एवं अपने शरीर की कान्ति से सारे संसार को मोहित करने वाले पशुपति भगवान् मृत्युञ्जय का मैं ध्यान करता हूं।"

ऐसा ध्यान करके उनकी मानसोपचार से पूजा करे—

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।
ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।
ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं परिकल्पयामि।
ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं परिकल्पयामि।
ॐ सं सर्वात्मकान् ताम्बूलादिसर्वोपचारान् समर्पयामि।

इसके पश्चात् 'ॐ जूं स:' इस त्र्यक्षरी मन्त्र का जप करे। संकल्प के अनुसार जप पूर्ण होने पर पुनः न्यास करके जप-समर्पण करके क्षमा प्रार्थना करे और भगवान् को प्रणाम कर अपना अग्रिम कार्य करे। इसके १२ लाख जप उत्तम तथा ३ लाख जप मध्यम मान से होते हैं।

● पुरश्चरण के लिए विशेष विधान

उपर्युक्त मन्त्र का ही यदि विशेष शान्ति के लिए अनुष्ठान करके

श्रीमहामृत्युञ्जय-पूजायन्त्रम्
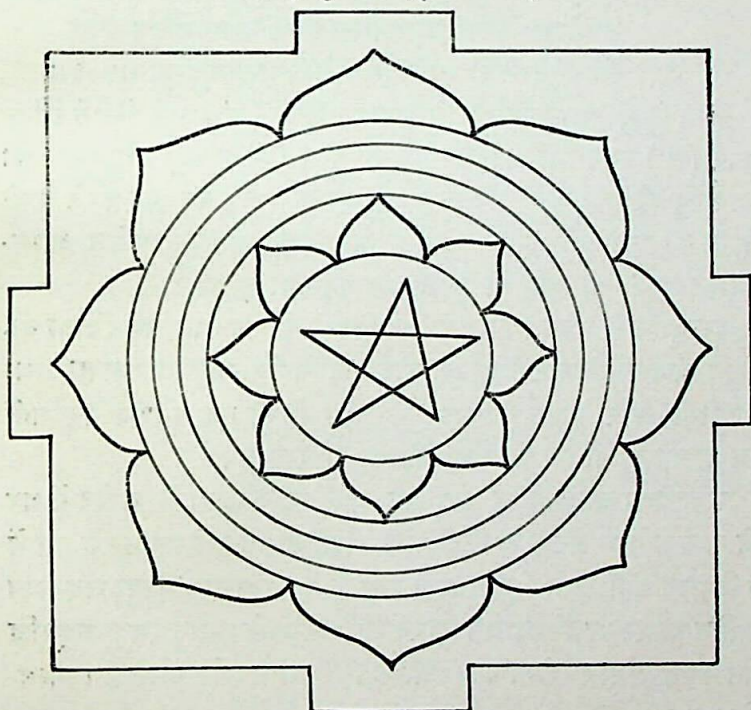
पुरश्चरण करना हो तो उसमें निम्नलिखित विधान अधिक करना चाहिए। आवरण-पूजा के लिए यन्त्र (पृष्ठ ६५) इस प्रकार होगा—

२. रोग का ज्ञान और उसका निर्णय प्राप्त करने के लिए मृत्युञ्जय-मन्त्र सम्पुटित व्यासमन्त्र

'मन्त्र-महोदधि' में कहा गया है कि—

मृत्युञ्जयेन पुटितं यो व्यासस्य मन्त्रं जपेत्।
सर्वोपद्रव-सन्त्यक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।।१५।१०७।।

अर्थात् जो व्यक्ति मृत्युञ्जय मन्त्र से सम्पुटित व्यासमन्त्र का जप करता है वह सब उपद्रवों से मुक्त होकर वांछित फल को प्राप्त करता है तथा वहीं मन्त्र का स्वरूप दिखाकर इस मन्त्र के बारे में लिखा है कि—

तारः शूली वामकर्ण-बिन्दुयुक्तः ससर्गकः।
मृत्युञ्जयस्य मन्त्रोऽयं त्रिवर्णो मृत्युनाशनः ।। १०८।।
जप्तोऽयं केवलो नृणामिष्टसिद्धिं प्रयच्छति।
किं पुनस्तेन पुटितो वेदव्यासमनूत्तमः ।।१०९।।

तार (ॐ), वामकर्ण एवं बिन्दुसहित शूली (जूं) तथा विसर्ग सहित सकार (सः) इन तीनों अक्षरों से वना हुआ (ॐ जूं सः) मृत्युञ्जय का मन्त्र मृत्यु को नष्ट करने वाला है। केवल इस मन्त्र का जप करने से ही मनुष्यों को इष्टसिद्धि प्राप्त होती है और यदि इससे सम्पुटित व्यास-मन्त्र का जप किया जाए तो इसके फल का क्या कहना ?

इस दृष्टि से जब रोग एवम् अशक्ति के कारण मानसिक चिन्ता बढ़ रही हो, वैद्य एवं डाक्टरों द्वारा कोई एक निर्णय नहीं हो रहा हो तथा स्वयं रोगी और उसके परिवार के लोग किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे हों तो इस मन्त्र का जप करना चाहिए।

प्रायः देखा जाता है कि कुछ रोग बहुत लम्बे समय से शरीर में घर किये रहते हैं तथा अनेक डाक्टरों को—वैद्यों को दिखाने पर उनके मत में एक निश्चय नहीं होता कि बीमारी क्या है ? उस समय 'मृत्युञ्जय-मन्त्र सम्पुटित व्यास-मन्त्र' का जप करने से महर्षि वेदव्यास स्वयं सद्बुद्धि प्रदान करते हैं और रोगी की रक्षा के लिए मार्गदर्शन करते हैं। मन्त्र-विधि इस प्रकार है—

● विनियोग

अस्य श्रीव्यासमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः सत्यवतीसुतो देवता व्यां वीजं नमः शक्तिः मम रोगज्ञानपूर्वकं तन्निवृत्तये मृत्युञ्जय-सम्पुटित-व्यासमन्त्रजपे विनियोगः।

इससे विनियोग करके करन्यास तथा हृदयादिन्यास करें। यथा—

● करन्यास

व्यां अंगुष्ठाभ्यां नमः। व्यीं तर्जनीभ्यां नमः। व्यूं मध्यमाभ्यां नमः। व्यैं अनामिकाभ्यां नमः। व्यौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। व्यः करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः।

● हृदयादिन्यास

व्यां हृदयाय नमः। व्यीं शिरसे स्वाहा। व्यूं शिखायै वषट्। व्यैं कवचाय हुम्। व्यौं नेत्रत्रयाय वौषट्। व्यः अस्त्राय फट्।

● ध्यान

व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं,
वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम्।
विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिं,
पाराशर्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं भजे सिद्धये॥

(व्याख्यान मुद्रा से सुशोभित करतल वाले, सुन्दर योग पीठ पर स्थित, वायें जानु पर दूसरा हाथ रखे हुए, विद्यानिधि, विप्रसमुदाय से सेवित, प्रसन्न मुख, नीलकमल के समान अङ्गकान्ति वाले, अत्यन्त पुण्यात्मा महर्षि पाराशर के पुत्र व्यास जी का सिद्धिप्राप्ति के लिए मैं स्मरण करता हूं।)

इस प्रकार ध्यान करके मानस-पूजा करे और नीचे लिखे हुए मन्त्र का जप करे—

"ॐ जूं सः व्यां वेदव्यासाय नमः सः जूं ॐ"

इस मन्त्र का आठ हजार जप एवं (खीर से), हवन तर्पण, मार्जन आदि विधिपूर्वक करने से सभी मनचाहे फल प्राप्त होते हैं।

(३) सिद्धमहामृत्युञ्जय-मन्त्रानुष्ठान-विधि

अनुष्टुप् त्र्यम्बक-मन्त्र-प्रयोग

भगवान् महामृत्युञ्जय के शास्त्रकार महर्षियों ने कई प्रकार के मन्त्र प्रदर्शित किये हैं जिनमें 'शारदातिलक' ग्रन्थ में अनुष्टुप् त्र्यम्बक मन्त्र का प्रयोग इस प्रकार है—

शिवालय आदि किसी पवित्र स्थान में पुरश्चरण से पहले दिन प्रायश्चित्तादि करके प्रारम्भ किये जानेवाले दिन प्रात:कालीन नित्य-कर्म से निवृत्त हो अपने आसन पर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठे। भस्म त्रिपुण्ड्र[1] तथा रुद्राक्षमाला धारण करे तथा आचमन करके प्राणयाम करे। देशकाल का संकीर्तन करते हुए संकल्प करे कि—

श्रीमहामृत्युञ्जयप्रीतये त्र्यम्बकमन्त्रजपपुरश्चरणमहं करिष्ये तदङ्गतया च भूतशुद्धिं प्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासं श्रीकण्ठादिकला-न्यासं मूलमन्त्रन्यासपूर्वकं मन्त्रराजस्यावरणपूजां च करिष्ये।

ऐसा संकल्प करके गणपति-स्मरण, भूतशुद्धि, स्वप्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृका तथा बहिर्मातृकान्यास करे। तदनन्तर निम्नलिखित श्रीकण्ठादिकलान्यास करे—

● **विनियोगः**

अस्य श्रीकण्ठादिकलान्यासस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः गायत्रीछन्दः अर्धनारीश्वरो देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयश्चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगः।

● **ऋष्यादिन्यासः**

ॐ दक्षिणामूर्तये नमः (शिरसि), ॐ गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे), ॐ अर्धनारीश्वरदेवतायै नमः (हृदये), ॐ हलबीजाय नमः (गुह्ये), ॐ स्वरशक्तये नमः (पादयोः), ॐ विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

● **कर-हृदयादिन्यासाः**

	पहली बार	दूसरी बार
ॐ ह् सां	**(अंगुष्ठाभ्यां नमः**	**—हृदयाय नमः)**
ॐ ह् सीं	**(तर्जनीभ्यां नमः**	**—शिरसे स्वाहा)**
ॐ ह् सूं	**(मध्यमाभ्यां नमः**	**—शिखायै वषट्)**
ॐ ह् सैं	**(अनामिकाभ्यां नमः**	**—कवचाय हुम्)**
ॐ ह् सौं	**(कनिष्ठिकाभ्यां नमः**	**—नेत्रत्रयाय वौषट्)**
ॐ ह् सः	**(करतलाकरपृष्ठाभ्यां नमः**	**—अस्त्राय फट्)**

---

१. भस्मधारण के बारे में हम अन्यत्र इसी ग्रन्थ में लिख रहे हैं, वहीं देखें।

ध्यानम्

पाशाङ्कुशवराक्षस्रक्पाणिशीतांशुशेखरम् ।
त्र्यक्षं रक्तसुवर्णाभमर्द्धनारीश्वरं भजे ॥१॥

बन्धूक-काञ्चननिभं रुचिराक्षमालां,
पाशाङ्कुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र—
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः ॥२॥

इस प्रकार ध्यान करके निम्नलिखित मन्त्र बोलते हुए न्यास करे। न्यास के समय मन्त्र के सामने दिखाये गये स्थानों पर तत्त्वमुद्रा से उन-उन अङ्गों का स्पर्श करता रहे।

ॐ ह्सौं अं श्रीकण्ठेश-पूर्णोदरीभ्यां नमः (मस्तके)
,, ,, आं अनन्तेश-विरजाभ्यां ,, (मुखवृत्ते)
,, ,, इं सूक्ष्मेश-शाल्मलीभ्यां ,, (दक्षिणनेत्रे)
,, ,, ईं त्रिमूर्ति-लोलाक्षीभ्यां ,, (वामनेत्रे)
,, ,, उं अमरेश-वर्तुलाक्षीभ्यां ,, (दक्षकर्णे)
,, ,, ऊं अर्धीश-दीर्घघोणाभ्यां ,, (वामकर्णे)
,, ,, ऋं भारभूतेश-दीर्घमुखीभ्यां ,, (दक्षनासापुटे)
,, ,, ॠं तिथीश-गोमुखीभ्यां ,, (वामनासापुटे)
,, ,, लृं स्थाण्वीश-दीर्घजिह्वाभ्यां ,, (दक्षगण्डे)
,, ,, लॄं हरेश-कुण्डोदरीभ्यां ,, (वामगण्डे)
,, ,, एं झिण्टीशोर्ध्वकेशीभ्यां ,, (ऊर्ध्वोष्ठे)
,, ,, ऐं भौतिकेश-विकृतमुखीभ्यां ,, (अधरोष्ठे)
,, ,, ओं सद्योजातेश-ज्वालामुखीभ्यां ,, (ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ)
,, ,, औं अनुग्राहेशोल्कामुखीभ्यां ,, (अधोदन्तपंक्तौ)
,, ,, अं अक्रूरेश-श्रीमुखीभ्यां ,, (शिरसि)
,, ,, अः महासेनेश-विद्यामुखीभ्यां ,, (मुखमध्ये)
,, ,, कं क्रोधीश-महाकालीभ्यां ,, (दक्षस्कन्धे)
,, ,, खं चण्डेश-सरस्वतीभ्यां ,, (दक्षकूर्परे)

ॐ ह्सौं गं पञ्चान्तकेश-सर्वसिद्धिगौरीभ्यां नमः (दक्षमणिबन्धे)
,, ,, घं शिवोत्तमेश-त्रैलोक्यविद्याभ्यां ,, (दक्षकराङ्गुलिमूले)
,, ,, ङं एकरुद्रेश-मन्त्रशक्तिभ्यां ,, (दक्षकराङ्गुल्यग्रे)
,, ,, चं कूर्मेशात्मशक्तिभ्यां ,, (वामस्कन्धे)
,, ,, छं एकनेत्रेश-मूलमातृकाभ्यां ,, (वामकूर्परे)
,, ,, जं चतुराननेश-लम्बोदरीभ्यां ,, (वाममणिबन्धे)
,, ,, झं अजेश-द्रविणीभ्यां ,, (वामकराङ्गुलिमूले)
,, ,, ञं सर्वेश-नागरीभ्यां ,, (वामकराङ्गुल्यग्रे)
,, ,, टं सोमेश-खेचरीभ्यां ,, (दक्षस्कन्धमूले)
,, ,, ठं लाङ्गलीश-मञ्जरीभ्यां ,, (दक्षजानुनि)
,, ,, डं दारुकेश-रूपिणीभ्यां ,, (दक्षगुल्फे)
,, ,, ढं अर्धनारीश-वीरिणीभ्यां ,, (दक्षपादाङ्गुलिमूले)
,, ,, णं उमाकान्तेश-काकोदरीभ्यां ,, (दक्षपादाङ्गुल्यग्रे)
,, ,, तं आषाढीश-पूतनाभ्यां ,, (वामपादोरुमूले)
,, ,, थं दण्डीश-भद्रकालीभ्यां ,, (वामजानुनि)
,, ,, दं अत्रीश-योगिनीभ्यां ,, (वामगुल्फे)
,, ,, धं मीनेश-शंखिनीभ्यां ,, (वामपादाङ्गुलिमूले)
,, ,, नं मेषेश-तर्जनीभ्यां ,, (वापपादाङ्गुल्यग्रे)
,, ,, पं लोहितेश-कालरात्रिभ्यां ,, (दक्षपार्श्वे)
,, ,, फं शिखीश-कुब्जिनीभ्यां ,, (वामपार्श्वे)
,, ,, बं छगलाण्डेश-कपर्दिनीभ्यां ,, (पृष्ठे)
,, ,, भं द्विरण्डेश-वज्राभ्यां ,, (नाभौ)
,, ,, मं महाकालेश-जयाभ्यां ,, (जठरे)
,, ,, यं त्वगात्मभ्यां वालीश-
सुमुखेश्वरीभ्यां ,, (हृदये)
,, ,, रं असृगात्मभ्यां भुजगेश-
रेवतीभ्यां ,, (दक्षांसे)
,, ,, लं मांसात्मभ्यां पिनाकीश-
माधवीभ्यां ,, (ककुदि)

ॐ ह्सौं वं मेदआत्मभ्यां खड्गोश-
वारुणीभ्यां नमः (हृदयादिवामांसे)
,, ,, शं अस्थ्यात्मभ्यां केश-वायवीभ्यां ,, (हृदयादिदक्षकरान्तं)
,, ,, षं मज्जात्मभ्यां श्वेतेश-
रक्षोविदारिणीभ्यां ,, (हृदयादिवामकरान्तं)
,, ,, सं शुक्रात्मभ्यां भृग्वीश-
सहजाभ्यां ,, (हृदयादिवामपादाग्रान्तं)
,, ,, हं प्राणात्मभ्यां लकुलीश-
लक्ष्मीभ्यां ,, (,, दक्षपादाग्रान्तं)
,, ,, लं शक्त्यात्मभ्यां शिवेश-
व्यापिनीभ्यां ,, (,, नाभ्यन्तम्)
,, ,, क्षं परमात्मभ्यां संवर्तकेश-
मायाभ्यां ,, (,, शिरोन्तम्)

इस प्रकार न्यास करके भगवान् शिव का ध्यान करें।

अत्र रुद्राः स्मृता रक्ता धृताशूल-कपालका:।
शक्तयो रुद्रपीठस्था: सिन्दूरारुण-विग्रहा:॥

रक्तोत्पलकपालाभ्यामलङ्कृतकराम्बुजा:।
न्यस्तास्तिष्ठन्तु सर्वेऽपि शक्ति-सौख्यविवर्धना:॥

इतना ध्यान करके मूल महामृत्युञ्जय-मन्त्र से प्राणायाम करे तथा **'कृतोऽयं श्रीकण्ठादिन्यास: शिवार्पणमस्तु'** कहकर जल छोड़ दे।

● मूलमन्त्र-न्यासादि

विनियोग—अस्य श्रीत्र्यम्बकमन्त्रस्य वसिष्ठऋषिरनुष्टुप् छन्दस्त्र्यम्बक: पार्वतीपतिर्देवता त्र्यं बीजं बं शक्ति: कं कीलकं मम सर्वरोगनिवृत्तये (सर्वाभीष्टसिद्धये) त्र्यम्बकमन्त्रजपे विनियोग:। (इतना कहकर जल छोड़ें।)

● ऋष्यादिन्यास

ॐ वसिष्ठऋषये नमः (शिरसि), ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे), ॐ त्र्यम्बकदेवतायै नमः (हृदये), ॐ त्र्यं बीजाय नमः (गुह्ये), ॐ बं शक्तये नमः (पादयोः), ॐ कं कीलकाय नमः (नाभौ) ॐ विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)

● कर-हृदयादिन्यासा:

पहली बार	दूसरी बार
ॐ त्र्यम्बकं	(अंगुष्ठाभ्यां नमः—हृदयाय नमः)
ॐ यजामहे	(तर्जनीभ्यां नमः—शिरसे स्वाहा)
ॐ सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्	(मध्यमाभ्यां नमः—शिखायै वषट्)
ॐ उर्वारुकमिव बन्धनात्	(अनामिकाभ्यां नमः—कवचाय हुम्)
ॐ मृत्योर्मुक्षीय	(कनिष्ठिकाभ्यां नमः—नेत्रत्रयाय वौषट्)
ॐ मामृतात्	(करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः—अस्त्राय फट्)

● अङ्गन्यासः

ॐ त्र्यं नमः	(पूर्वमुखे)		ॐ नं नमः	(वामोरुमूले)
,, बं ,,	(पश्चिममुखे)		,, उं ,,	(दक्षिणोरुमध्ये)
,, कं ,,	(दक्षिणमुखे)		,,र्वां ,,	(वामोरुमध्ये)
,, यं ,,	(उत्तरमुखे)		,, रुं ,,	(दक्षिणजानुनि)
,, जां ,,	(उरसि)		,, कं ,,	(वामजानुनि)
,, मं ,,	(कण्ठे)		,, मिं ,,	(दक्षिणजानुवृत्ते)
ॐ हें नमः	(मुखे)		,, वं ,,	(वामजानुवृत्ते)
,, सुं ,,	(नाभौ)		,, बं ,,	(दक्षिणस्तने)
,, गं ,,	(हृदि)		,, धं ,,	(वामस्तने)
,, धिं ,,	(पृष्ठे)		,, नां ,,	(दक्षिणपार्श्वे)
,, पुं ,,	(कुक्षौ)		,, मृं ,,	(वामपार्श्वे)
,, ष्टिं ,,	(लिंगे)		,, त्यों ,,	(दक्षिणपादे)
ॐ वं नमः	(गुदे)		,, मुं ,,	(वामपादे)
,, र्धं ,,	(दक्षिणोरुमूले)		,, क्षीं ,,	(दक्षिणकरे)

ॐ यं ,,	(नासिकाग्रे)	ॐ मृं ,,	(वामनासायाम्)
,, मां ,,	(दक्षिणनासायां)	,, तां ,,	(मूर्ध्नि)

● पदन्यास

ॐ त्र्यम्बकं	(शिरसि)	ॐ बन्धनात्	(जठरे)
,, यजामहे	(भ्रुवोः)	,, मृत्योः	(लिङ्गे)
,, सुगन्धिं	(नेत्रयोः)	,, मुक्षीय	(गुदे)
,, पुष्टिवर्धनम्	(मुखे)	,, मा	(जान्वोः)
,, उर्वारुकम्	(गण्डयोः)	,, अमृतात्	(पादयोः)
,, इव	(हृदये)		

तदनन्तर मूलमन्त्र से व्यापकन्यास करके ध्यान करें।

● ध्यानम्

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो,
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं,
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

इस प्रकार ध्यान करके यन्त्र में मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके भगवान् त्र्यम्बकेश्वर की मानसोपचार से पूजा करें तथा निम्नलिखित ५ मुद्राएं दिखाये।

यन्त्रराज का स्वरूप इस प्रकार है—

श्री त्र्यम्बक-पूजायन्त्रम्
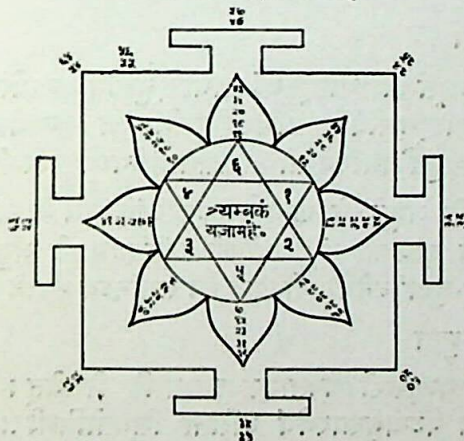
मुष्टि-सारङ्ग-शक्त्याख्य लिङ्ग-पञ्चमुखाभिधाः।
मुद्राः प्रदर्श्य प्रजपेल्लक्षं तस्य विधानतः॥

१—मुष्टिमुद्रा

मुष्टिं दक्षिणहस्तेन विधायोर्ध्वं समुन्नयेत्।
मुद्रा मुष्टयभिधा ख्याता सर्वविघ्नविनाशिनी॥

दाहिने हाथ से मुट्ठी बाँधकर उस को ऊपर की ओर उठाते हुए दिखाये। यह सब विघ्नों का नाश करने वाली 'मुष्टि-मुद्रा' है।

२—मृगमुद्रा

दक्षस्यानामिकाङ्गुष्ठमध्यमाग्राणि योजयेत्।
शिष्टे द्वे उच्छ्रिते कुर्यान् मृगमुद्रेयमीरिता॥

दाहिने हाथ के अनामिका, अंगुष्ठ और मध्यमा के अग्रभागों को मिलाये तथा 'शेष तर्जनी एवं कनिष्ठा' को खड़ी करने से 'मृगमुद्रा' बनती है।

३—शक्तिमुद्रा

मुष्टी करौ विधाय द्वौ वामस्योपरि दक्षिणम्।
कृत्वा शिरसि युञ्जीत शक्तिमुद्रेयमीरिता॥

दोनों हाथों की मुट्ठियां बांधकर वांयी मुट्ठी पर दांयी मुट्ठी रखे और उसे सिर पर लगाये। यह 'शक्तिमुद्रा' कहलाती है।

४—लिङ्ग-मुद्रा

उच्छ्रितं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत्।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत्॥
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी।

दांये हाथ के अंगूठे को खड़ा रखकर बांये हाथ के अंगूठे से बांध दें और फिर बांये हाथ की अंगुलियों को दांयें हाथ की अंगुलियों से बांध ले। यह 'लिङ्ग-मुद्रा' बनेगी जो शिव का सान्निध्य कराने वाली है।

५—पञ्चमुख-मुद्रा

मणिबन्धकरौ युक्तावङ्गुल्यग्राणि मेलयेत्।
मुद्रा पञ्चमुखाख्येयं दर्शिता शिवतोषिणी॥

मणिवन्ध से युक्त दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रभागों को मिलायें। यह 'पञ्चमुख-मुद्रा' भगवान् शिव को प्रसन्न करने वाली है।

अथ आवरण-पूजा

१. **प्रथम आवरण में**—आग्नेयादि षट्कोणों में हृदय आदि षडङ्गों की पूजा करें। यथा—

(१-६)—ॐ त्र्यम्बकं हृदयाय नमः। ॐ यजामहे शिरसे स्वाहा।
ॐ सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् शिखायै वषट्।
ॐ उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुम्।
ॐ मृत्योर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ मामृतात् अस्त्राय फट्।

२. **द्वितीय आवरण में**—अष्टदल में अष्टमूर्तियों की पूजा करें। यथा—

(७-१४)—ॐ अर्कमूर्तये नमः। ॐ इन्द्रमूर्तये नमः।
ॐ वसुधामूर्तये नमः। ॐ तोयमूर्तये नमः।
ॐ वह्निमूर्तये नमः। ॐ वायुमूर्तये नमः।
ॐ आकाशमूर्तये नमः। ॐ यजमानमूर्तये नमः।

३. **तृतीय आवरण में**—वहीं कुछ ऊपर आठ शक्तियों की पूजा करें। यथा—

(१५-२२)—ॐ रमायै नमः। ॐ शकायै नमः।
ॐ प्रभायै नमः। ॐ ज्योत्स्नायै नमः।
ॐ पूर्णायै नमः। ॐ ऊषायै नमः।
ॐ पूरण्यै नमः। ॐ सुधायै नमः।

४. **चतुर्थ आवरण में**—वहीं कुछ ऊपर अन्य आठ शक्तियों की पूजा करें। यथा—

(२३-३०)—ॐ विश्वायै नमः। ॐ विद्यायै नमः।
ॐ सितायै नमः। ॐ प्रह्वायै नमः।
ॐ सारायै नमः। ॐ सन्ध्यायै नमः।
ॐ शिवायै नमः। ॐ निशायै नमः।

५. **पञ्चम आवरण में**—वहीं कुछ ऊपर अन्य आठ शक्तियों की पूजा करें। यथा—

(३१-३८)—ॐ आर्यायै नमः। ॐ प्रज्ञायै नमः। ॐ प्रभायै नमः।
ॐ मेधायै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ कान्त्यै नमः।
ॐ धृत्यै नमः। ॐ सत्यै नमः।

६. छठे आवरण में—वहीं कुछ ऊपर अन्य आठ शक्तियों की पूजा करें। यथा—

(३९-४६)—ॐ धरायै नमः। ॐ मायायै नमः। ॐ अविन्यै नमः।
ॐ पद्मायै नमः। ॐ शान्तायै नमः। ॐ मोघायै नमः।
ॐ जयायै नमः। ॐ अमलायै नमः।

७. सातवें आवरण में—भूपुर में इन्द्रादि दिक्पालों की पूर्वादि क्रम से पूजा करें। यथा—

(४७-५४)—ॐ इन्द्राय नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ यमाय नमः।
ॐ निर्ऋतये नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वायवे नमः।
ॐ कुवेराय नमः। ॐ ईशानाय नमः।
ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ अनन्ताय नमः।

८. आठवें आवरण में—वज्रादि दस आयुधों की पूजा करें यथा—

(५५-६४)—ॐ वज्राय नमः। ॐ शक्त्यै नमः।
ॐ दण्डाय नमः। ॐ खड्गाय नमः।
ॐ पाशाय नमः। ॐ अङ्कुशाय नमः।
ॐ गदायै नमः। ॐ त्रिशूलाय नमः।
ॐ पद्माय नमः। ॐ चक्राय नमः।

इस प्रकार इस आवरण-पूजा में कुल चौंसठ स्थानों पर पूजा होती है। इस में गन्धाक्षत मिश्रित फूलों से अथवा केवल फूल की पत्तियां या अक्षतों से पूजा करनी चाहिए। पूजा के पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, मन्त्रपुष्पांजलि आदि विधिवत् करके पुरश्चरण के रूप में मूलमन्त्र का जप करना चाहिए।

जप के लिए मूल मन्त्र—(३२ अक्षरों का)

(१) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

इस मन्त्र का एक लाख जप होने से पुरश्चरण पूर्ण होता है। पुरश्चरण के पश्चात् दशांश हवन करना चाहिए। जिस में १—बिल्व,

२—खेर, ३—वट, ४—तिल, ५—सरसों, ६—पायस (खीर), ७—दूध, ८—दही, ९—पलाश और १०—दूर्वा, इन दस द्रव्यों को घी में डुबोकर आहुति दी जाए तथा हवन का दशांश 'मूल मन्त्र' बोल कर अन्त में '**ॐ त्र्यम्बकं देवं तर्पयामि**' मन्त्र से तर्पण करे। इसके दशांश से अपने ऊपर अथवा जिस रोगी के लिए जप किया जाए उस पर मार्जन रूप अभिषेक एवं उसके दशांश की संख्या में ब्राह्मणों को भोज कराये।

इस प्रकार पुरश्चरण करने से यह महामन्त्र प्रयोग के योग्य हो जाता है, जैसा कि वहीं कहा गया है—

एवं कृते प्रयोगार्हो जायतेऽयं महामनुः। इति

यह विधान पर्याप्त विस्तार से यहां दिया गया है। इसके अनुसार अपने यहां चांदी का यन्त्र बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करें और तदनन्तर प्रतिदिन इसी पद्धति से 'आवरण-पूजा' करके जप करे। जिस प्रकार श्रीयन्त्र पर 'बहिर्याग' के रूप में नित्योपासना के समय न्यास, पात्रा-सादन एवं यन्त्र-पूजा होती है, वही पद्धति यहां भी निर्दिष्ट है। इसके पश्चात् मन्त्र-जप करना चाहिए। जप के पश्चात् त्र्यम्बक-सहस्र नामार्चन होता है और अन्त में स्तोत्र-पाठ करके यह पूजा सम्पन्न करने का विधान है। इस विस्तार को देखकर पाठक घबराएं नहीं। अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार सदा आगे बढ़ते रहने और आत्म-कल्याण करने के लिए यही उत्तममार्ग है। इस से भगवान् महामृत्युञ्जय की अनन्य कृपा, भक्ति एवं दूसरों के रोग दुःखादि दूर करने की शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार साधना करने वाला स्वयं नीरोग रहकर इस लोक में सभी प्रकार के सुखों का भागी बनकर अन्त में भगवान् सदाशिव के चरणों में पहुंचकर मुक्ति प्राप्त करता है। भगवान् आशुतोष उसको अपने प्रिय भक्तों में अग्रणी स्थान प्रदान करते हैं।

● जब प्राण अत्यन्त संकट में हों

समय का कोई विश्वास नहीं है। न जाने कब कौन-सा सङ्कट आ जाए? अन्य संकटों से तो मनुष्य किसी तरह बच सकता है पर प्राणों का संकट आने पर अन्य सहायताएं मिलने पर भी ईश्वर-कृपा की बड़ी

आवश्यकता रहती है। इस दृष्टि से महामृत्युञ्जय-मन्त्र को ही अधिक तेजस्वी बनाने तथा अन्य रक्षा कर देवों का भी सहयोग प्राप्त करने के लिए आगम-शास्त्रों में कुछ मन्त्र दिये गये हैं जिन में **'शताक्षरा-गायत्री' मन्त्र** और शुक्रोपासित **'गायत्री मन्त्रगर्भित त्र्यम्बक मन्त्र'** का बड़ा महत्त्व है।

इन मन्त्रों का प्रयोग रोगी स्वयं मानसिक जप के रूप में करे। रोगी के परिवार के लोग रोगी के कमरे में घृत का दीपक जलाकर जप करें अथवा ब्राह्मण-प्रतिनिधि द्वारा किसी शिव-मन्दिर में या घर में ही पूजा के स्थान पर जप करायें।

आपरेशन अथवा अन्य विशेष चिकित्सा के पहले ही मृत्युञ्जय मन्त्र अथवा इनमें से किसी मन्त्र का जप करना-कराना आरम्भ कर लेना चाहिए। प्रभु-कृपा से या तो आपरेशन आदि का संकट ही नहीं आयेगा और आयेगा तो वह सुख-शान्तिकारक होगा।

यहां हम एक सुप्रसिद्ध विधि दे रहे हैं। अन्य विधियों में ऋषियों का, छन्दों का, देवताओं का, बीज, शक्ति और कीलकं का क्रम मन्त्र के अनुसार बदल जाएगा। ध्यान यही रहेगा। किसी योग्य गुरु से समझकर अन्य प्रयोग करें।

● शताक्षरा गायत्री-मन्त्र जप-विधान

विनियोग—

अस्य शताक्षरा गायत्रीमन्त्रस्य विश्वामित्र-मरीचि-कश्यप-वशिष्ठ-ऋषयो गायत्री-त्रिष्टुप्-अनुष्टुप्छन्दांसि सवितृ-ज्ञातवेदस्त्र्यम्बका देवता गायत्र्यक्षराणि बीजानि अनुष्टुबक्षराणि शक्तयस्त्रिष्टुबक्षराणि कील-कानि ममारिष्टशान्तये जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—

१—विश्वामित्र-मरीचि-कश्यप-वशिष्ठऋषिभ्यो नमः (शिरसि)
२—गायत्री-त्रिष्टुबनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः (मुखे)
३—सवितृ-जातवेदस्त्र्यम्बकदेवेभ्यो नमः (हृदये)
४—गायत्र्यक्षरेभ्यो बीजेभ्यो नमः (गुह्ये)

५—अनुष्टुबक्षरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः (पादयोः)
६—त्रिष्टुबक्षरेभ्यः कीलकेभ्यो नमः (नाभो)
७—विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)

कर-षडङ्गन्यासाः

	(पहली बार)	(दूसरी बार)
१—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।	—अंगुष्ठाभ्यां०,	हृदयाय०
२—ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्।	—तर्जनीभ्यां०,	शिरसे०
३—ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमम-रातीयतो निदहाति वेदः।	—मध्यमाभ्यां०,	शिखायै०
४—ॐ स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा-नावेव सिन्धं दुरितात्यग्निः।	—अनामिकाभ्यां०,	कवचाय०
५—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।	—कनिष्ठिकाभ्यां०,	नेत्रत्रयाय०
६—ॐ उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।	—करतलकरपृष्टाभ्यां०,	अस्त्राय०

ध्यानम्—

स्मर्तव्याऽखिलालोकवर्ति-सततं यज्जङ्गमस्थावरं,
व्याप्तं येन च यत्प्रपञ्चविहितं मुक्तिर्यतः सिध्द्यति।
यद्वा स्यात् प्रणवत्रिभेदगहनं श्रुत्वा च यद् गीयते,
तद्वस्तु स्थितिसिद्धयेऽस्तु वरदं ज्योतिस्त्रयोत्थं महः।।

इस प्रकार विनियोग, न्यास एवं ध्यान करके मूल मन्त्र का जप करे।

सम्पूर्ण मूलमन्त्रः

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।
ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।

इस मन्त्र का यथाशक्ति जप करके—

"अनेन शताक्षरागायत्रीजपाख्येन कर्मणा श्रीसवितृजातवेदस्त्र्यम्बकदेवा: प्रीयन्ताम्" इतना कहकर जल छोड़ें और क्षमा प्रार्थना करें।

● अन्य प्रयोग

आयुर्वेद के महान् ग्रन्थ 'चरक' के चिकित्सा-स्थान अध्याय १ में लिखा है कि—

सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
संवत्सराणि पौषीं वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम् ।।

—इत्यादि

जिसका तात्पर्य यह है कि—एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रहकर गौएं चराये और रात को गौओं के बीच ही सोए। मन से गायत्री का ध्यान करता रहे। फिर पौष, माघ अथवा फाल्गुन की किसी शुभ तिथि के तीन दिन तक उपवास रखकर आंवले के वन में प्रवेश करे और आंवले के किसी वृक्ष पर चढ़कर आंवले खाये। इस प्रकार जितने आंवले खायेगा वह उतने ही वर्ष जीएगा। दो-सौ तीन-सौ आंवले खाने पर उतनी ही आयु होगी। इस में संशय नहीं है। अतः गायत्री जप ही आयुष्यवर्धक है यह निश्चित है। वहीं यह भी कहा गया है कि—

सर्वरोग निवारण के लिए गायत्री जप के पश्चात् यह प्रार्थना करनी चाहिए।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।। (अथ० १९।७१।१)

इस दृष्टि से यदि कुछ नहीं बन सके तो केवल गायत्री मन्त्र का ही जप करें। सब प्रकार से कल्याण होगा।

● साङ्गोपाङ्ग महामृत्युञ्जय-मन्त्र जपविधान

किसी भी मन्त्र के जप से पूर्व उसके 'अंग' और 'उपांग' मंत्रों के जप भी आवश्यक माने गये हैं। इन में मुख्य मन्त्र यदि पुरुष देव का है तो 'भैरवी

का मन्त्र' और यदि देवी का मन्त्र है तो **'भैरव का मन्त्र'** दशांश की संख्या में जप करना आवश्यक है। इस से मन्त्र का चैतन्य यथावत् बना रहता है, अन्यथा भैरव उसका पुण्यांश हर लेते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक मुख्य मन्त्र का **'पादजप'** भी दशांश में होना चाहिए। मूल जप के पश्चात् उसकी पूर्ति के लिए अन्त में **'शिवपञ्चाक्षरीमन्त्र'** का दशांश जप भी होता है। इस प्रकार के मन्त्र-जप में प्रातः **सृष्टि-क्रम**, मध्याह्न में **स्थिति-क्रम** तथा सायं **संहार क्रम** से जप किया जाता है। इस प्रक्रिया में त्र्यम्बक के दोनों मन्त्र भी लिये जाते हैं। इसका मन्त्रस्वरूप और जप-विधान इस प्रकार है—

विनियोग—पूर्वोक्त विनियोग के साथ ही **'अङ्गोपाङ्ग-सहित'** इतना और जोड़ दें।

न्यास-ध्यान—ये भी पूर्ववत् ही रहेंगे।

१. **अमृतेश्वरी-मन्त्र**—ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जये भगवति चैतन्यचन्द्रे हंससञ्जीवनि स्वाहा। (इस मन्त्र का दशांश जप करें।)

२. **प्रथमपाद मन्त्रजप**—ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। श्रीशिव।

(इस मन्त्र का दशांश जप करें।)

३. **मूलमन्त्र-जप**—ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। ॐ ह्रौं उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। ॐ जूं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम्। ॐ सः उर्वारुक-मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामुतः। श्रीशिव।[1]

४. **पञ्चाक्षर शिव मन्त्र**—ॐ नमः शिवाय। (दशांश जप)

इस प्रकार थोड़ा भी जप किया जाए तो वह बहुत उत्तम फल देता है। शास्त्रों में अंगहीन मन्त्र का जप सामान्य कहा गया है जब कि साङ्ग-जप का माहात्म्य सर्वोपरि बताया है। इस मन्त्र-जप-क्रम में मूलमन्त्र में बीजमन्त्र, व्याहृति और पादमध्य में बीजमन्त्रों का भी प्रयोग है। इसका कारण यह है कि आगमों में मन्त्र के पदों को भिन्नपाद करके जप का निर्देश दिया गया है। किसी भी मन्त्र को अच्छिन्नपाद के रूप में जप

---

१. यह मन्त्र अकेला रहेगा तो यह पूर्वोक्त क्रम से ही प्रयुक्त होगा।

करना निषिद्ध बतलाया है। इसीलिए गायत्री मन्त्रजप में भी ऐसा ही किया जाता है।

भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अच्छिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति ।।

मन्त्र के अन्त में भी कुछ पल्लव संयोजन का निर्देश है, यह मन्त्र का आच्छादन माना गया है। 'मन्त्राणां पल्लवो वासः' ऐसा वचन है। अतः यहां गुरूपदेशानुसार 'श्रीशिव' पल्लव का संयोजन है।

अमृतेश्वरी-मन्त्र-प्रयोग

शिव जी के समान ही भगवती के मृत्युञ्जय-मन्त्र की आराधना का भी विधान तन्त्रों में प्राप्त होता है। 'श्रीभुवनेश्वरी-महास्तोत्र' में श्रीपृथ्वीधराचार्य ने स्तुति-पद्यों के माध्यम से इसका सूचन इस प्रकार किया है—

श्रीमृत्युञ्जयनामधेयभगवच्चैतन्यचन्द्रात्मिके,
ह्रीङ्कारि प्रथमा तमांसि दलय त्वं हंससञ्जीविनि।
जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितं मे कुरु,
त्वां सेवे निजबोधलाभरभसा स्वाहाभुजामीश्वरीम् ।।३३।।

इस पद्य में कवि ने प्रार्थना के साथ ही मन्त्र का निर्देश भी किया है। तदनुसार मूलमन्त्र है—

ॐ श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जये भगवति चैतन्यचन्द्रे हंससञ्जीविनि स्वाहा।

और वहीं अगले पद्य में ध्यान भी दिया है, जो इस प्रकार है—

जाग्रद्बोधसुधामयूखनिचयैराप्लाव्य सर्वा दिशो,
यस्याः कापि कला कलङ्करहिता षट्चक्रमाक्रामति।
दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा वाचं परां तन्वती,
सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे ।।३५।।

इस ध्यान के अतिरिक्त टीकाकार ने 'पूजा-पद्धति' में 'मृत्युञ्जय अमृतेश्वरीयन्त्र' का भी एक पद्य दिया है, जो मुख्यतः केवल सोलह स्वर अमृतबीज और लाङ्गली बीज के लिखने से बनता है। पद्य इस

प्रकार है—

व्योमेन्दो रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं,
पत्रान्तर्गतपञ्चवर्गयशलार्णादित्रिवर्गं क्रमात् ।
आशास्वस्त्रिषु लान्तलाङ्गलियुजा क्षोणीपुरेणावृतं,
वर्णाब्जं शिरसि स्थितं विषगदप्रध्वंसि मृत्युञ्जयेत् ॥

यही यन्त्र वर्णादि लिखकर धारण और पूजा के लिए भी प्रयुक्त होता है ।[1]

● सर्व रोगनाशक धर्मराज मन्त्र-विधान

यमराज का ही दूसरा नाम धर्मराज है । 'मन्त्र-महोदधि' ग्रन्थ में इसका संक्षिप्त मन्त्र और विधान दिया है जो इस प्रकार है—

संकल्प—'मम सकलापदां विनाशनाय सर्वरोगाणां प्रशमनाय श्रीधर्मराजमन्त्रजपमहं करिष्ये ।'

विनियोग एवं ऋष्यादि न्यास इस मन्त्र के नहीं हैं क्योंकि यह सिद्धमन्त्र है । केवल जप से पूर्व षडंगन्यास किया जाता है । यथा—

ॐ क्रों ह्रीं हृदयाय नमः । ॐ आं वैं शिरसे स्वाहा ।
ॐ वैवस्वताय शिखायै वषट् । ॐ धर्मराजाय कवचाय हुम् ।
ॐ भक्तानुग्रहकृते नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ नमः अस्त्राय फट् ।

ध्यान—

पाथः संयुतमेघसन्निभतनुः प्रद्योतनस्यात्मजो,
नृणां पुण्यकृतां शुभावहवपुः पापीयसां दुःखकृत् ।
श्रीमद्दक्षिणदिक्पतिर्महिषगोभूषाभरालंङ्कृतो,
ध्येयः संयमनीपतिः पितृगणस्वामी यमो दण्डभृत् ॥

(अर्थात्—जल से भरे हुए मेघ के समान श्याम शरीरवाला, सूर्य का पुत्र, पुण्यात्मा मनुष्यों का कल्याण करने वाला, पापियों को दुःख देनेवाला, दक्षिणदिशा का स्वामी, भैंसे की सवारी किया हुआ तथा आभूषणों से सुशोभित नरकपुरी एवं पितृगणों का स्वामी दण्डधारी यमराज का मैं ध्यान करता हूं ।)

ऐसा ध्यान करके मानस पूजा करे और 'ॐ ह्रीं क्रों आं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः।' इस मन्त्र का जप करे।

इस मन्त्र का नित्य जप करने से यमराज प्रसन्न होकर आपत्तियों का नाश, रोगों का नाश तथा नरक से मुक्ति देते हैं।

माला-मन्त्र की प्रयोग विधि

"मन्त्र सर्वशक्तिमान् इष्टदेवता वर्णमय स्वरूप है" ऐसा अनुभव जप के समय करते हुए मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के और एक-एक मन्त्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करने से मन्त्र के अधिष्ठातृ देव प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता से भक्ति का उदय होता है तथा भक्ति की तीव्रता से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

यह समझ कर सावधानी-पूर्वक जप-अनुष्ठान करें। अवश्य सफलता मिलेगी। श्रद्धा और विश्वास ही सफलता की कुञ्जी है। यही कारण है कि जैसे खान-पान, रहन-सहन में मनुष्यों के पृथक्-पृथक् विचार और पद्धतियां होती हैं उसी प्रकार हमारे पूर्वाचार्यों ने अनेक प्रकार के मन्त्रों का निर्देश किया है।

'माला-मन्त्र' के भी वहुत-से प्रकार हैं। कहीं देवता के विभिन्न नाम, गुण, कर्म से इसकी योजना होती है तो कहीं आवरण-पूजा में आने वाले प्रमुख सहचर देवों का स्मरण होता है। कुछ माला-मन्त्र स्तोत्र-रूप भी होते हैं जैसे दुर्गा सप्तशती को 'स्तोत्रमाला मन्त्र' कहा गया है।

मन्त्रशास्त्रीय ग्रन्थों में मालामन्त्र के लक्षणों में अक्षरों की संख्या पर भी विचार किया गया है तथा ऐसे अनेकाक्षर वाले मन्त्रों का पुस्तक देखकर पाठात्मक जप करने का आदेश दिया है।

यदि साधना करने वाला विस्तारपूर्वक मूर्ति अथवा यन्त्र पूजा नहीं कर सके तो—अक्षत, पुष्प अथवा देवता की प्रिय वस्तु को मन्त्र बोलते हुए उन पर चढ़ाये। श्रीविद्या-खड्गमाला आदि में यह क्रम विस्तार से मिलता है।[1]

---

१. 'श्री महात्रिपुर सुन्दरी खड्गमाला' नामक ग्रन्थ हमारे द्वारा सम्पादित संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित है, वहीं देखें।

महामृत्युञ्जय की पूजा में जलधारा, दुग्धादि पञ्चामृतधारात्मक अभिषेक अथवा बिल्वपत्र, पुष्पादि से पूजा के लिए यह सहस्राक्षर-मन्त्र अत्यन्त लाभकारी है। अतः यहां दिया जा रहा है—

सहस्राक्षर-मृत्युञ्जय-मालामन्त्र

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्वमन्त्रस्वरूपाय सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे नीलकण्ठाय पार्वतीप्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्धूलितविग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टिस्थितिप्रलयकालरौद्रावताराय दक्षाध्वरध्वंसकाय महाकालभेदकाय मूलाधारैकनिलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधिदेवाय षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनायानेककोटिब्रह्माण्डनायकायान्त वासुकितक्षककर्कोटकशङ्खकुलिकपद्ममहापद्मे त्यष्टनागकुलभूषणाय प्रणवस्वरूपाय चिदाकाशायाकाशादिस्वरूपाय ग्रहनक्षत्रमालिने सकलाय कलङ्करहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे-सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवेदान्तपारगाय सकललोकैकवरप्रदाय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजावासाय निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मोहाय निर्मदाय निश्चिन्ताय निरहङ्काराय निराकुलाय निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुपप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरातङ्काय निष्प्रपञ्चाय निस्सङ्गाय निर्द्वन्द्वाय निराधाराय नीरोगाय निष्क्रोधाय निर्गमाय निष्पापाय निर्भयाय निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निस्संशयाय निरञ्जनाय निरुपमविभवाय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दादृश्याय परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय जय महारौद्रभद्रावतारमहाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्ग-खड्ग- पाशाङ्कुशडमरु-त्रिशूल-चाप-बाण-गदा-शक्ति-भिन्दिपाल-तोमर-मुसल-मुद्गर - पट्टिश-परशु - परिघ - भुशुण्डी-शतघ्नी - चक्राद्यायुध - भीषणकरसहस्रमुखदंष्ट्राकरालविकटाट्टहास-विस्फारित - ब्रह्माण्डमण्डलनागेन्द्रकुण्डलनागेन्द्रहारनागेन्द्रवलय -

"नागेन्द्रचर्मधरमृत्युञ्जयत्र्यम्बकत्रिपुरान्तकविरूपाक्षविश्वेश्वर-विश्वरूप वृषवाहनविश्वतोमुख सर्वतो मां रक्ष रक्ष। ज्वल ज्वल महामृत्युभय-मपमृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चौरान् मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय त्रिशूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय वाणैः सन्ताडय सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्ड-वेताल-मारीच-ब्रह्मराक्षसगणान् सन्त्रासय सन्त्रासय मामभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासय नरकभयाद् मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामनन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते स्वाहा।'[1]

महामृत्युञ्जय के नाम से प्राप्त होने वाले
● विविध मन्त्रों के स्वरूप

हम ने परिचय-विभाग में महामृत्युञ्जय-मन्त्र के विविध प्रकारों का परिचय देते हुए वहां सभी मन्त्रों की नामावली दी है। उसी के अनुसार यहां सबसे पहले उन मन्त्रों का स्वरूप बतला देते हैं।

सभी मन्त्रों की साधना प्रायः समान होती है। कहीं-कहीं विनियोग, न्यास और ध्यान की विधियों में विशेषता रहती है। यह इसलिए होती है कि भिन्न-भिन्न ऋषियों ने अपने-अपने इष्ट-देवों की कृपा से इन मन्त्रों को देखा है अथवा प्राप्त किया है।

सबका अपना-अपना महत्त्व है। विशेष स्थिति में इनका विशेष प्रकार से अनुष्ठान किया जाता है। इनमें से हम कुछ मन्त्रों के प्रयोग ही यहां प्रस्तुत करेंगे। विशेष जानकारी के लिए इस विषय के मर्मज्ञ विद्वानों से सम्पर्क करें।

१. एकाक्षरी मन्त्र—"हौं"

२. त्र्यक्षरी मृत्युञ्जय-मन्त्र

सर्वप्रथम 'ॐ जूं सः' इन तीन अक्षरों से बना हुआ मन्त्र प्राप्त होता

१—इस मन्त्र में दिए गए संकेताङ्क कुछ पाठान्तरों के सूचक हैं।

है। यह 'मृत्युञ्य-मन्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है।'

३. चतुरक्षरी अमृतमृत्युञ्जय मन्त्र

इस मन्त्र में **'ॐ वं जूँ सः'** ये चार अक्षर हैं। इसका जप करने से शरीर में बढ़े हुए ताप (गर्मी) की शीघ्र शान्ति होती है।

४. नवाक्षरी मृत्युञ्जय मन्त्र

इस मन्त्र में 'ॐ जूं सः'**पालय-पालय**' ये नौ अक्षर हैं।

५. दशाक्षरी—(अमृतमृत्युञ्जय-विद्या)

क्रमांक २ के मन्त्र में **'मां पालय पालय'** जोड़ने पर यह दस अक्षरों वाला मन्त्र बनता है। साथ ही यदि किसी अन्य रोगी की रक्षा के लिए जप करना हो, तो **'मां'** के स्थान पर **'रोगी का नाम'** द्वितीया विभक्ति का एकवचन बनाकर जोड़ देना चाहिए।

६. पञ्चदशाक्षरी—

जब ऊपर बतलाये हुए दस अक्षरों वाले मन्त्र के अन्त में **'सः जूं ॐ'** ये तीन विलोम बीज लगाये जाएंगे यह पन्द्रह अक्षरों वाला मन्त्र बनेगा।

७. वैदिक-त्र्यम्बक मृत्युञ्जय मन्त्र—(३२ अक्षर)

वेद में त्र्यम्बक-मृत्युञ्जय-मन्त्र के रूप में ३२ अक्षरों का मन्त्र इस रूप में प्राप्त होता है—

त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्युत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

यह मूलमन्त्र सुप्रसिद्ध है।

८. ३३ अक्षरी मन्त्र

उपर्युक्त मन्त्र में पहले ॐ लगाने से बनता है।
'शान्तिरत्न' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि—

त्र्यम्बकस्य विधानं तु कीर्तयिष्ये मुनीश्वराः।
यथोक्तविधिना युक्तं संस्मृतं ब्रह्मणा पुरा॥

१. इस मन्त्र का उद्धार पद्य इस प्रकार है—

मृत्युञ्जयस्त्रिधा प्रोक्त आद्यो मृत्युञ्जयः स्मृतः।
मृतसञ्जीवनी चैव महामृत्युञ्जयस्तथा॥

मृत्युञ्जयः केवलः स्यात् पुटितो व्याहृतित्रयैः।
तारं त्रिबीजं व्याहृत्य पुटितो मृतजीवनी॥

तारं त्रिबीजं व्याहृत्य पुटितैस्तैस्त्रियम्बकः।
महामृत्युञ्जयः प्रोक्तः सर्वमन्त्रविशारदैः॥

अर्थात्—हे मुनीश्वरो ! ब्रह्मा जी ने पूर्वकाल में शास्त्रोक्त विधान के अनुसार जो त्र्यम्बक-मन्त्र का विधान कहा है, उसे मैं कहता हूं। मृत्युञ्जय-मन्त्र तीन प्रकार का होता है जिसमें पहला 'मृत्युञ्जय' है, दूसरा 'मृतसञ्जीवनी' है तथा तीसरा 'महामृत्युञ्जय' है।

इन में प्रथम मन्त्र व्याहृतित्रय—'भूर्भुवः स्वः' से सम्पुटित होता है। इसे 'केवल मृत्युञ्जय' भी कहते हैं। दूसरे मन्त्र में—ॐ, त्रिबीज—'हौं जूं सः' और व्याहृतित्रय का सम्पुट होता है। इसे 'मृतसञ्जीवनी' कहते हैं। और उपर्युक्त द्वितीय मन्त्र में जोड़े गये त्रिबीज और व्याहृतित्रय के प्रत्येक अक्षर के पहले ॐ लगाया जाता है। यह सभी मन्त्रविशारदों ने कहा है। यही तीसरा मन्त्र 'शुक्राचार्य द्वारा आराधित' माना जाता है। इन मन्त्रों के स्वरूप इस प्रकार हैं—

९. केवल मृत्युञ्जय-मन्त्र (४८ अक्षरात्मक)

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० (इत्यादि पूरी ऋचा) ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ॥

१०. मृतसञ्जीवनी मन्त्र (५२ अक्षरात्मक)

ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० (इत्यादि पूरी ऋचा) ॐ स्वः ॐ भुवः भूः ॐ सः जूं ह्रौं ॐ॥

११. महामृत्युञ्जय मन्त्र (शुक्राराधित ६२ अक्षरात्मक)

ॐ हौं ॐ जूं ॐ सः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० (इत्यादि पूरी ऋचा) ॐ स्वः ॐ भुवः ॐ भूः ॐ सः ॐ जूं ॐ हौं ॐ॥

इस मन्त्र के वारे में कहा गया है कि—

आदौ प्रासादबीजं तदनु मृतिहरं तारकं व्याहृतीश्च,
प्रोच्चार्य त्र्यम्बकं यो जपति मृतिहरं भूय एवैतदाद्यम्।
कृत्वा न्यासं षडङ्गं स्रवदमृतकरं मण्डलान्तःप्रविष्टं,
ध्यात्वा योगीशरुद्रं स जयति मरणं शुक्रविद्याप्रसादात्॥

अर्थात्—उपर्युक्त ६२ अक्षरों वाले इस मृत्युञ्जय-मन्त्र का षडङ्ग-न्यास एवं योगीश्वर शिव का ध्यान करके जो जप करता है, वह शुक्र-विद्या की कृपा से मृत्यु को जीत लेता है। अतएव इस मन्त्र को '**शुक्र-विद्या**' भी कहते हैं।

१२. शुक्रोपासिता मृतसञ्जीवनी विद्या

यह प्रसिद्ध है कि महर्षि शुक्राचार्य को अमृत-सिद्धि थी। इसी कारण वे असुरों के गुरु के रूप में सम्मान्य थे। जव देवासुरों का संग्राम होता और देवताओं के शस्त्रास्त्र से असुर घायल होते अथवा मर जाते तो उन्हें वे अपनी अमृत-सिद्धि से ही स्वस्थ एवं पुनरुज्जीवित कर देते थे। तन्त्रों में यह विद्या मृत्युञ्जय-मन्त्र और गायत्री-मन्त्र के योग से वनी हुई वतलाई है। यथा—

वेदादि-भूरादिपदत्रयं च, मध्ये कृतं मृत्युहरं त्रियम्बकम्।
जपेत् फलार्थी विधिवत् प्रजप्य, प्रासादबीजं मृत्युञ्जयसम्पुटेन॥

इसके अनुसार १—गायत्री का प्रथम पाद, २—त्र्यम्बकं का प्रथम पाद, ३—गायत्री का द्वितीय पाद, ४—त्र्यम्बकं का द्वितीय पाद, ५—गायत्री का तृतीय पाद, ६—त्र्यम्बकं के शेष पाद दोनों और आदि अन्त में 'ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः' को लोम विलोम से युक्त करके यह मन्त्र वनाया जाता है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—

ॐ हौं जूं सः ॐभूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे भर्गो देवस्य धीमहि सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् धियो यो नः प्रचोदयात् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ॥

(१३) शुक्रोपासिता मृतसञ्जीवनी का अन्य रूप

अन्य कल्पों में यही मन्त्र इस प्रकार भी बतलाया गया है—

ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे तत्सवितुर्वरेण्यं सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् भर्गो देवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बन्धनाद् धियो यो नः प्रचोदयान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं ह्रौं ॐ ।।

(१४) बगला के भैरवरूप में मृत्युञ्जय का मन्त्र तथा आम्नाय भेदजन्य मन्त्र

आम्नाय भेद से दक्षिणाम्नाय का मन्त्र वामदेवसंहिता के अनुसार —'ॐ जूं सः' इस बीज से युक्त वैदिक मन्त्र, ऊर्ध्वाम्नाय का मन्त्र केवल त्र्यम्बक मन्त्र और 'मेरुतन्त्र' के अनुसार एवं उभयाम्नाय का मन्त्र आदि में 'ॐ ह्रौं जूं सः भूर्भुवः स्वः' से युक्त और अन्त में ये ही बीज विपरीत रहने पर तथा मध्य में त्र्यम्बक मन्त्र रहने से बनता है। यह 'मन्त्रमहोदधि' में लिखा है। ऐसे ही अन्य आम्नायों में भी सामान्य परिवर्तन होगा। ध्यान पद्यों में 'चन्द्रार्काग्नि' दक्षिणाम्नाय का 'हस्ताभ्यां कलश' इत्यादि ऊर्ध्वाम्नाय का तथा 'हस्ताम्भोज' इत्यादि पद्य उभयाम्नाय का ध्यान माना गया है।

(१५) वेदोक्त दोनों त्र्यम्बक मन्त्र

शुक्ल यजुर्वेद संहिता में दो त्र्यम्बक मन्त्रों का एक मन्त्र दिया है। कुछ आचार्यों का मत है कि उन दोनों मन्त्रों का साथ जप होना चाहिए क्योंकि एक मन्त्र पुष्टिकारक है और द्वितीय रक्षाकारक। यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।।

इस के आरम्भ और अन्त में बीजमन्त्र भी लगाये जा सकते हैं।

(१६) अन्य मन्त्रों के साथ मृत्युञ्जयमन्त्र

तन्त्रों में एक मन्त्र को अन्य अपेक्षित मन्त्रों के साथ मिलाकर जप करने के भी निर्देश दिये गये हैं। मृत्युञ्जयमन्त्र को **'शताक्षरी गायत्री'** में स्थान मिला है। यथा—

(१) ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(२) ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥

(३) ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

इस मन्त्र के आदि में 'ॐ भूर्भुवः स्वः' तथा अन्त में 'स्वः भुवः भूः ॐ' लगाकर जप करने से इहलोक और परलोक दोनों में सुख-शान्ति प्राप्त होती है। ऐसा 'प्रपंचसारसंग्रह' में कहा गया है।

(१७-२१) शताक्षरी के अन्य पांच प्रकार—

१—'गायत्री, त्र्यम्बक और जातवेद' इस क्रम से जप करने पर पापशान्ति होती है। २—'त्र्यम्बक, जातवेद और गायत्री' इस क्रम से अथवा ३—'त्र्यम्बक, गायत्री और जातवेद' इस क्रम से जप करने पर आयुष्य वृद्धि होती है तथा ४—'जातवेद, त्र्यम्बक और गायत्री' के क्रम से अथवा ५—'जातवेद, गायत्री और त्र्यम्बक' इस क्रम से जप करने पर शत्रुनाश होता है।

(२२) अनुष्टुप्त्रय-आयुष्कर मृत्युञ्जयमन्त्र

'वैरिञ्चकल्प' में तीन अनुष्टुप् मन्त्रों का एक प्रयोग दिया गया है, जिसमें 'ब्रह्मा, नृसिंहविष्णु और त्र्यम्बकरुद्र' तीनों के वैदिक मन्त्र आते हैं।

यथा—　ॐ हंसात्मको यो अपामग्नेस्तेजसा दीप्यमानः।
स नो मृत्योस्त्रायतां नमो ब्रह्मणे विश्वनाभिः ॥
ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

(२३) बृहद् महामृत्युञ्जय-मालामन्त्र

विभिन्न मन्त्र और बीजमन्त्रों के योग से बना यह मन्त्र इस प्रकार प्राप्त होता है—

"ॐ भू: ॐ भुव: ॐ सुव: ॐ मह: ॐ जन: ॐ तप: ॐ सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ घृणि: सूर्य आदित्य ॐ तत्सत् ॐ हंसात्मको यो अपामग्नेस्तेजसा दीप्यमान: स नो मृत्योस्त्रायतां नमो ब्रह्मणे विश्वनाभि: हाहि हाहि हाहि हावु हावु हावु ॐ ह्रीं हंस: सोहं स्वाहा ॐ भुव: भर्गो देवस्य धीमहि ॐ नमो नारायणाय ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहं भ्राजा भ्राजा भ्राजा वव्रे ववायवों आधातोरण्याय वर्यो सहस्रज्वालिनी मृत्युनाशिनी स्वाहा ॐ सुव: धियो यो न: प्रचोदयात् आमद्य ॐ ह्रीं ॐ नम: शिवाय त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ववावं वववं ववं वेवं वेवं ववं व स जह्नदौं झ ह्रीं अरे वंवं मेवरयु धावया दं जं ॐ जुं स: स्वौं हंस: मां पालय पालय ह्लादय ह्लादय मृत्योर्मोचय मोचय सोहं स्वौं ईं हंस: जुं ॐ ईं स्वौं हंस: मां पालय पालय ह्लादय ह्लादय मृत्योर्मोचय मोचय सोहं स्वौं ईं स: जुं ॐ परो रजसे सावदों आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव: स्वरोम्।"

(२४) सहस्राक्षरी मृत्युञ्जयमन्त्र

यह मन्त्र हम ने आगे दिया है।

(२५) पौराणिक मृत्युञ्जयमन्त्र

ॐ मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजराव्यधिपीडितं कर्मबन्धनै:॥

(२६) विलोमाक्षर मृत्युञ्जयमन्त्र

तान्त्रिक-विधानों में मन्त्र जप के लिए तथा उन में विशेष चैतन्य लाने की दृष्टि से कई नये-नये विधान बताये गये हैं। इसी दृष्टि से

विलोमाक्षरों से भी यह 'त्र्यम्बक मन्त्र' जपने की प्रक्रिया तन्त्रग्रन्थों में प्राप्त है। यथा—

ॐ त् ता मृ मा य क्षी मुं त्यो मृ न् ना न्ध ब व मि क रु र्वा उ।
म् न र्ध व ष्टि पु न्धि ग सु हे म जा य कं म्ब त्र्य॥

इस के आस-पास श्री ॐकार, व्याहृति आदि बीजों को लोम विलोम-रूप से लगाया जा सकता है।

इसी प्रकार और भी शास्त्रों में बहुत से प्रकार दिये गये हैं किन्तु विस्तार-भय से संकेत-मात्र किया है तथा कुछ मन्त्र आगे विधि के साथ दिये गये हैं।

सर्वरोगहर पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजा

'क्रियोड्डीश' तन्त्र में कहा गया है कि—

अतः परं महेशानि ! पूजनं पार्थिवं शिवम्।
विशेषतः सर्वरोगे त्र्यम्बकस्य प्रपूजनम्॥१॥
यत्कृत्वा सर्वतः शान्तिर्भवेद् देवि ! न संशयः।

"हे पार्वती ! सब प्रकार के रोगों की शान्ति के लिए पार्थिव शिव-लिङ्ग की पूजा का वर्णन करता हूं। विशेषतया सभी प्रकार के रोगों में से किसी भी रोग की उत्पत्ति होने पर त्र्यम्बक शिव की पार्थिव-पूजा करनी चाहिए। इस के करने से सभी प्रकार की शान्ति होती है, इस में कोई सन्देह नहीं है।" अतः मृत्युञ्जय-साधना की अङ्गभूत इस पूजा का प्रकार भी हम यहां संक्षेप में दे रहे हैं—

पार्थिव शिवलिंग पूजा-विधि

सर्व-प्रथम किसी पवित्र स्थान पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख आसन पर बैठकर आचमन, प्राणायाम, गणपति स्मरण, पवित्रीकरण आदि करके संकल्प करे—

ॐ (अन्य आवश्यक अंश बोलकर) अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकनामाहं श्रीमन्महामृत्युञ्जय-प्रीत्यर्थं पार्थिवेश्वर-शिवलिङ्ग-पूजनमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् भस्म और रुद्राक्षमाला धारण करे और किसी पवित्र

स्थान से लाई हुई मृत्तिका[1] को '**ॐ ह्रीं मृत्तिकायै नमः**' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। फिर '**वँ**' वीज का उच्चारण करते हुए मिट्टी में जल डालकर '**ॐ वामदेवाय नमः**' इस मन्त्र से उसे मिलाये। '**ॐ हराय नमः ॐ मृडाय नमः ॐ महेश्वराय नमः**' बोलते हुए। शिवलिङ्ग तथा ११ एकादश रुद्र की आकृतियां बनाये और अपने समक्ष काष्ठ अथवा पाषाण के पीठ पर अथवा सोने, चांदी, तांवे के पात्र में '**ॐ शूलपाणये नमः**' कहते हुए स्थापित करे।

संक्षिप्त न्यास-विधि

ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेव ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीसदाशिवो देवता ॐ वीजं नमः शक्तिः शिवाय कीलकं मम साम्व-सदाशिवप्रीत्यर्थं न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—ॐ वामदेवऋषये नमः (शिरसि), ॐ अनुष्टुप्-छन्दसे नमः (मुखे), ॐ साम्वसदाशिवदेवतायै नमः (हृदये), ॐ ॐ वीजाय नमः (गुह्ये), ॐ नमः शक्तये नमः (पादयोः), ॐ शिवाय कीलकाय नमः (नाभौ), ॐ विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।[2]

शिव-पञ्चमुख-न्यासः

ॐ नं तत्पुरुषाय नमः (हृदये), ॐ मम् अघोराय नमः (पादयोः), ॐ शिं सद्योजाताय नमः (गुह्ये), ॐ वां वामदेवाय नमः (मस्तके), ॐ यम् ईशानाय नमः (मुखे)।

१—मृत्तिका लाने के समय 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का जप करे और जिस स्थान से लाये वहां पहले भूमि की प्रार्थना के लिए यह यह मन्त्र बोले—

सर्वाधारे धरे देवि ! त्वद्रूपं मृत्तिकामयम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव सुप्रभे॥

२—इन मन्त्रों से आवाहित कर यथाविधि पूजा करें।

● कर-हृदयादिन्यासाः

	(पहली बार)	(दूसरी बार)
ॐ ॐ	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ नं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ मं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ शिम्	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ वां	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ यं	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

● ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं,
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

● प्राण-प्रतिष्ठा विधि :

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः, ऋग्यजुः-सामानि च्छन्दांसि प्राणाख्या देवता, आं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्रों कीलकम् देवप्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—ॐ ब्रह्मविष्णुरुद्र ऋषिभ्यो नमः (शिरसि), ॐ ऋग्यजुः सामच्छन्दोभ्यो नमः (मुखे), ॐ प्राणाख्यदेवतायै नमः (हृदये), ॐ आं बीजाय नमः (गुह्ये), ॐ ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः), ॐ क्रों कीलकाय नमः (नाभौ), विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

इस प्रकार न्यास करके पुष्पादि से शिवलिङ्ग का स्पर्श करते हुए बोले—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं शिवस्य प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं शिवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि, वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्र-जिह्वाघ्राण-पाणि-पाद-पायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इससे प्राणप्रतिष्ठा करके—ॐ भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि, ॐ भुवः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि, ॐ स्वः पुरुषं साम्बसदाशिव-मावाहयामि।

यदि आप स्वयं करना चाहें ?
अथवा
विद्वान् द्वारा कराने की सुविधा प्राप्त न हो, तो ?

स्वयं करने योग्य सरल विधि

तन्त्रोक्त मन्त्रों के जप का सभी के लिए आदेश है। कोई भी व्यक्ति अपनी शक्ति और भक्ति के अनुसार अपने कल्याण के लिए भगवान् महामृत्युञ्जय के मन्त्र का जप करना चाहे तो उसे नीचे बताये अनुसार जप करना चाहिए।

(१) जिस मन्त्र का जप करने की इच्छा हो, उसका शुद्ध उच्चारण करें।

(२) जप के लिए निश्चित समय और निश्चित स्थान पर बैठकर जप करना उत्तम होता है।

(३) शुद्ध आसन पर बैठकर धूप-दीप लगा लें। शिव जी का कोई भी चित्र सामने रखें और उन के चरणों में प्रणाम करके जप आरम्भ करें।

(४) जपसंख्या भी एकरूप से निश्चित कर लेना अच्छा रहता है।

(५) मन्त्र का उच्चारण मन ही मन धीमी गति से करें।

(६) माला हो तो उस का उपयोग करें और न हो तो दाहिने हाथ की अंगुलियों के पर्वों से गिनती करें। करमाला का सामान्य प्रकार यह है कि—

अनामिका के मध्यपर्व से मूलपर्व पर आये, फिर कनिष्ठा के मूल से ऊपर होते हुए अनामिका तथा मध्यमा के ऊपरी पर्व पर होते हुए तर्जनी के मूल तक गिनें। इस प्रकार १० संख्या हो जायगी। तब वापस उलटे जाकर १० संख्या पूरी करें। मध्यमा के मध्य और मूलपर्व का स्पर्श न करें। ५ बार ऐसा जप करने से १०० की संख्या पूर्ण हो जाएगी। १० और जप लें तो १ माला पूरी हो। इस जप का फल भी उत्तम है।

(७) मन को स्थिर रखना, चञ्चलता न करना आदि अच्छी बातें अपनाएं।

(८) श्रद्धा और विश्वास बनाये रखें।

(९) यथाशक्ति परोपकार करें और छल-कपट से बचें।

(१०) सत्य विचार और शुद्ध आचार से मन्त्र जप का पूर्ण फल प्राप्त होता है।

सब मन्त्रों में सरल मन्त्र निम्नलिखित है—

"ॐ जूं स:" अथवा "ॐ जूं सः मां पालय-पालय"।

अथवा अन्य किसी भी मन्त्र को कण्ठस्थ करके जप करें।

इन मन्त्रों का यदि ऊपर लिखे नियमों के अनुसार जप नहीं किया जा सके तो भी हताश न होवें। हमारे कई परिचित बन्धुओं ने हम से पूछा है कि यात्रा-प्रवास में, अथवा विभिन्न व्यस्तताओं में समय और स्थान की असुविधा रहने पर जप कैसे किया जाए ?

इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों की आज्ञा है कि यदि मन्त्र के अक्षरों का उच्चारण जिह्वा और ओठों का स्पर्श न करे तो वे अशुद्ध नहीं होते और उन का जप कहीं भी किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। ओठ और जीभ हिलाये बिना प्रत्येक समय मन ही मन जप करने से भी पूर्ण लाभ होता है। अत: इसी रूप में जप करें।

पूजा के तथा न्यास-ध्यान के लिए लिखे गये विधान रूप मन्त्रों का प्रयोग न कर सकें तो "नमः शिवाय" इस पञ्चाक्षरी महामन्त्र से ही पूजा आदि कर सकते हैं। पर इतना अवश्य ध्यान रहे कि यह सब व्यवस्था कठिनाई और अभाव की स्थिति में ही करनी चाहिए उपेक्षा से नहीं।

मानसिक शान्ति प्राप्त करने का अचूक उपाय

महामृत्युञ्जय-मन्त्र-जप

आज की विकट परिस्थिति में प्रत्येक मानव अपने-आपको बहुत ही अशान्त अनुभव करता है। और—अशान्तस्य कुतः सुखम् ? जो अशान्त है उसे सुख कहां ? ऐसी स्थिति में मन की व्यग्रता का कहना ही क्या ?

न दिन को चैन और न रात्रि में निद्रा। अशान्ति का मूल आकांक्षाओं की अधिकता एवं उनकी आपूर्ति की व्यवस्था की चिन्ता है और उन की पूर्ति होने पर भी शान्ति कहां ?

इस सम्वन्ध में एक दृष्टान्त स्मरण हो आता है, जो इस प्रकार है—

एक राजा अपनी इच्छा और आवश्यकता की पूर्ति 'ठीक तरह से ठीक समय पर हो जाए' इसके लिए वड़ा प्रयत्न करता था। इस के लिए उस ने अच्छे से अच्छे नौकर रखे थे, सभी प्रकार के उपकरण-साधन जुटा लिये थे किन्तु उस की मनचाही वात की पूर्ति में कुछ कमी हो हो जाती थी, कुछ विलम्व हो ही जाता था। इसी कारण वह वहुत चिन्तित रहता था। धीरे-धीरे मानसिक अशान्ति का वह शिकार हो गया।

एक वार एक साधु उसके यहां आये और प्रसंगवश राजा की अशान्ति का कारण पूछा, राजा ने अपनी परेशानी का कारण वतला दिया। तव साधु ने कहा, इसमें परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं ? मैं तुम्हें एक सेवक देता हूं, जो सभी कार्य ठीक समय पर ठीक तरह से कर देगा। और अपने तप से एक यक्ष को प्रकट किया। उसको आज्ञा दी कि—राजा जो भी कार्य करने की आज्ञा करे उसे यथासमय यथोचित रूप से पूर्ण करना। यह सुनकर यक्ष ने स्वीकृति देते हुए विनम्र निवेदन किया कि—महाराज ! मैं आपकी आज्ञानुसार सभी कार्य तत्काल पूर्ण करूंगा किन्तु मेरी भी एक शर्त है, जो आपको माननी होगी।' राजा के द्वारा शर्त पूछने पर उसने वतलाया कि—"मैं काम तो करूंगा किन्तु कभी शान्त नहीं बैठूंगा।" और काम नहीं मिला तो आपको खा जाऊंगा—राजा ने सोचा—'इसमें क्या कठिनाई है ? मेरे पास काम की क्या कमी है, अनेक कार्य हैं' और उसको स्वीकृति दे दी।

सेवक ने कार्य आरम्भ किया। राजा आज्ञा देता और उसी क्षण वह यक्ष इच्छित वस्तु उपस्थित कर देता, उसमें किसी प्रकार की कोई भी कमी नहीं रहती। वड़ी-वड़ी कार्य-सूचियां बनतीं, कठिन से कठिन कार्य दिया जाता, किन्तु वह तो क्षण-भर में ही सव पूर्ण कर देता। और उसी समय उसकी शर्त का भय सवार हो जाता। राजा शान्ति प्राप्ति के स्थान पर और भी अशान्त होने लगा, उसके द्वारा खाये जाने का डर उसके

लिए मानसिक अशान्ति का कारण बन गया।

कुछ समय के पश्चात् वे ही साधु वापस आये और राजा से कुशल समाचार पूछे। राजा ने बहुत ही दु:खित होकर महाराज से कहा कि—मैं तो बहुत ही अशान्त हूं। इससे मुक्ति दिलाइये। सब कुछ समझ कर महाराज ने राजा से कहा, चिन्ता न करो, मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूं। उसके करने से कष्ट दूर होगा।

और उन्होंने राजा को बतलाया कि—"अपने सामने एक सीढ़ी बनवालो और जब काम न हो तो इस यक्ष को आज्ञा दो कि—काम हो तब काम करो और काम न होने पर इस सीढ़ी पर चढ़ो और उतरो। इसमें वह प्रमाद करे तो उसे दण्डित करने के लिए दो सेवक ऊपर-नीचे और लगा दो। इससे यह यक्ष कभी चुप नहीं बैठ सकेगा।"

यह प्रक्रिया राजा के लिए वरदान सिद्ध हुई और वह सुखी हो गया।

इस दृष्टान्त का फलितार्थ यह है कि मनुष्य राजा है, उसकी इच्छाएं अनन्त हैं आवश्यकताएं अनन्त हैं। उनके अभाव में मनुष्य मानसिक चिन्ता से पीड़ित रहता है। प्रभु की कृपा से उसे मन-रूपी यक्ष जैसा सेवक प्राप्त होता है, किन्तु कभी शान्त नहीं बैठता और अपनी शर्त के अनुसार काम न होने पर मनुष्य को खाने लगता है। अत: उसके लिए एक सीढ़ी-मन्त्रजप-रूप बनाइये। जब काम हो तब काम करे और काम न हो तब मन्त्रजप करे। इसमें प्रमाद न हो, इसका पूरा ध्यान रहे।

मन का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ है। अधिक चिन्ता-अशान्ति के कारण मस्तिष्क में जो ऊष्मा बढ़ जाती है, उसी से अनिद्रा, रोग, अशान्ति आदि बढ़ जाते हैं। अत: मस्तिष्क और मन को अमृत से सींचने के लिए 'महामृत्युञ्जय-मन्त्र का जप' एक अचूक उपाय है।

इसके लिए बेचैनी-अशान्ति के समय जैसी भी रुचि हो मन्त्र का जप करें। विशेष रूप से ऐसे समय में लोम-विलोम जप अधिक लाभप्रद होता है। यथा—

१. ॐ जूं सः सः जूं ॐ।

२. ॐ हौं जूं सः सः जूं हौं ॐ।

३. ॐ हौं जूं सः ॐ सः जूं हौं ॐ।

४. ॐ हौं ॐ जूं ॐ सः ॐ सः ॐ जूं ॐ हौं ॐ।

इस प्रकार मन्त्र के अक्षरों में प्रणव की योजना करें। अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जाए मन्त्र की योजना-प्रक्रिया में परिवर्धन-परिवर्तन करना चाहिये। नवीनता आने से मन उसी में लग जाएगा।

जप से थक जाने पर ध्यान करें, ध्यान से थकने पर स्तोत्र पाठ करें। यह भी उत्तम पद्धति है।

इसके अतिरिक्त यह पद्धति भी वहुत आम है कि मन्त्र को वर्णमाला से एक-एक अक्षर से पल्लवित और सम्पुटित करके जप करें। यथा—

अं ॐ जूं सः अं नमः। आं ॐ जूं सः आम्। इत्यादि।

सिद्ध-यन्त्रामृत–२

१—सिद्धमृत्युञ्जय-यन्त्र और उनके प्रयोग

उपासना के क्षेत्र में मन्त्र के पश्चात् यन्त्र का क्रम आता है। मन्त्र-जप के लिए आवश्यक है तो यन्त्र-पूजा के लिए आवश्यक है। यन्त्र इष्टदेव की आभ्यन्तर-मूर्ति है। मन को बाह्य वातावरण से हटाकर अन्तर्मुखी वनाने के लिए कर-चरणादि युक्त देह से युक्त आकृति-प्रतिमा में आकृष्ट करके चिन्तन में लगाना यह स्थूल प्रक्रिया है, जबकि प्रतीक-रूप यन्त्र के स्वरूप में आवाहित कर उसमें विराजमान इष्ट की भावना करना सूक्ष्म प्रक्रिया है।

यन्त्र देवता का आलय है। यह साधक के चित्त का नियमन करता है तथा यनादि योगविधि को प्राप्त होने पर उसका सब प्रकार से त्राण करता है। यन्त्र की उपासना से मन्त्र-जप पूर्णता को प्राप्त होता है। पूर्व महर्षियों ने प्रत्येक देवता के एकाधिक यन्त्रों का दर्शन किया है। लिपि का पूर्वरूप यन्त्रों से ही सिद्ध है। रेखा और बिन्दु के समन्वितरूप से हमारी समस्त लिपि पद्धति आविर्भूत हुई है, जब कि सर्वप्रथम तो बिन्दु को ही इसका मूल आधार माना गया है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया के रूप में मूलबिन्दु से निःसृत बिन्दुत्रय का मिलन त्रिकोण बना

और उसके पश्चात् यह सारा रेखात्मक प्रपञ्च व्याप्त हुआ जिसकी परिणति यन्त्र के रूप में सर्वमान्य हुई।

यन्त्र का उपयोग जिस प्रकार पूजा के लिए होता है, उसी प्रकार धारण के लिए भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी यन्त्र के कई उपयोग हैं।[१] पूजा के लिए सुवर्ण, चांदी, ताम्र, सप्तधातु, त्रिलोह, स्फटिक, मणि एवं शिला को आधार वनाकर उसमें यन्त्र को शुभ मुहूर्त में खुदवा कर उसकी विधिवत् प्रतिष्ठा करे और फिर नित्य पूजा करता रहे। धारण के लिए विशेष पर्व पर अष्ट गन्ध आदि से भोजपत्र आदि पर लिखकर पूजा-प्रतिष्ठा करे और शरीर के विशिष्ट अंगों पर धारण करे।

महामृत्युञ्जय यन्त्र के भी कुछ यन्त्र शास्त्रों में प्राप्त होतें हैं जिनमें **'पूजा-यन्त्र'**[२] और **'धारण यन्त्र'** और **'कवच-यन्त्र'** दोनों ही हैं। पूजा-यन्त्र का विधान विस्तार-पूर्वक होता है तथा अन्य यन्त्र पूजा, जप और धारण के लिए उपयोगी हैं। यहां कुछ यन्त्रों के वारे में प्रयोग दिये जा रहे हैं। यन्त्रों की उपासना के नियमों का पालन पूर्णरूप से करना आवश्यक है। इनका यदि लेखन-पूर्वक पुरुश्चरण करना हो, तो लेख्य सामग्री की शुद्धता, विधिपूर्वक निर्माण तथा लेखन क्रम आदि का निर्वाह अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए। यथासम्भव किसी योग्य व्यक्ति से परामर्श लेने से ज्ञानवृद्धि और सन्मार्ग मिलता है।

१—इस सम्बन्ध में विस्तार से जानने के लिए देखिये 'यन्त्र-शक्ति' भाग १ का परिचय विभाग।

२—पूजायन्त्रों के स्वरूप पहले दिये गये हैं।

अग्न्यात्मक महामृत्युञ्जय ऊर्ध्वमुखयन्त्र

यन्त्रोद्धार—

> त्रिकोणं वर्तुलं बाह्ये षट्कोणं तदनन्तरम् ।
> सप्ताष्टदलपद्मानि भूपुरद्वयवेष्टितम् ॥
> महामृत्युञ्जयाख्यं च सर्वारिष्ट-हरं परम् ।
> यन्त्रं पूज्यं सदा सेव्यं साधकैः परमाद्भुतम् ॥

इसके अनुसार त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, सप्तदलकमल अथवा अष्टदल कमल और दो भूपुर से वेष्टित यह यन्त्र बनता है। आकृति इस प्रकार है—
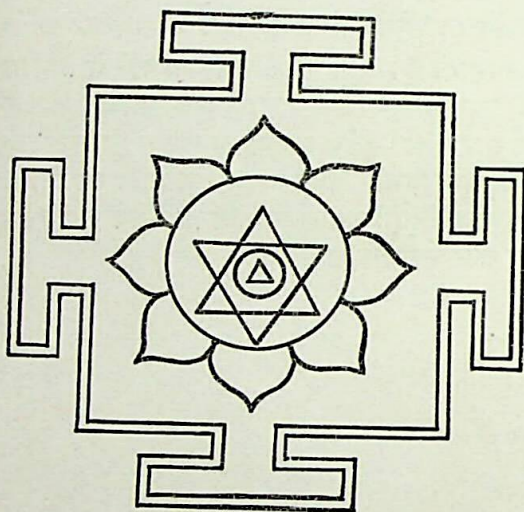
अग्न्यात्मक - महामृत्युञ्जय - ऊर्ध्वमुखयन्त्रम्

इस यन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा करके नित्यपूजा करें और मन्त्रविभाग में दिये गये विधान के मन्त्रशक्ति के पृष्ठ ६५ के अनुसार विनियोगादि करके जप से पूर्व निम्नलिखित ध्यान करें—

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरो
ह्यक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रवत्।
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सुकुम्भौ करौ,
पीयूषोन्नतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम्॥

फिर इस मृत्युञ्जय-मन्त्र का जप करें—

"ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टि-वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥ स्वः भुवः भूः ॐ सः जूं हौं ॐ।

मृतसञ्जीवनी यन्त्र

महामृत्युञ्जय यन्त्र के समान ही 'मृतसञ्जीवनीयन्त्र' भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह भी समस्त रोगों के नाश के लिए अचूक है। इसे भी पूर्ववत् तैयार करके पूजन करता रहे और अभिमन्त्रित करके इसे धारण भी किया जा सकता है।

यन्त्रोद्धार—

त्रिकोणं पञ्चकोणं च वृत्तमष्टदलावृतम्।
दले दलेऽष्टपत्राणि भूपुरं तदनन्तरम्॥

अर्थात् त्रिकोण, पञ्चकोण, वृत्त, अष्टदल कमल, प्रत्येक मेंआठ-आठ पत्र और भूपुर से यह यन्त्र बनता है। आकृति इस प्रकार है—यन्त्र
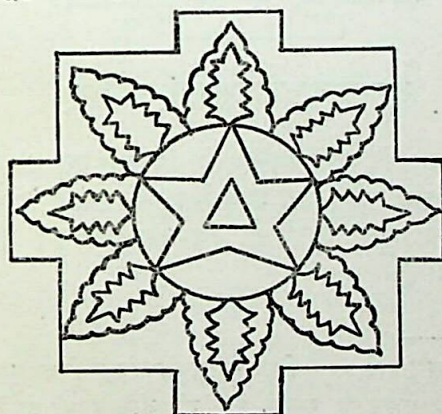
मृतसञ्जीवनीयन्त्रम्

का ध्यान इस प्रकार है—

चन्द्रार्काग्नि-विलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं,
मुद्रापाशमृणालसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीन्दुप्रगलत्—सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं,
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये॥[1]

मन्त्र १—ॐ जूं सः मां पालय पालय।[2]

अथवा २—ॐ हौं जूं सः [अमुकं]

जीवय-जीवय पालय-पालय सः जूं हौं ॐ
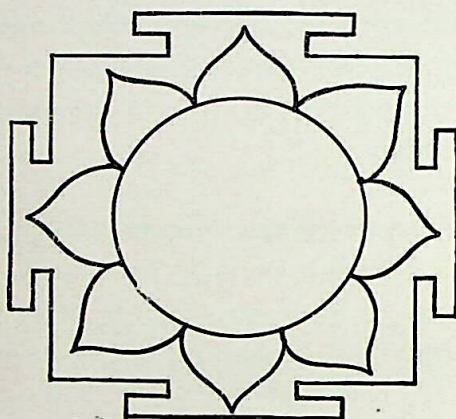
महामृत्युञ्जय-पूजन-यन्त्रम्

उपर्युक्त यन्त्र के अतिरिक्त आगे दिखाए गए रुद्र-पूजन-यन्त्र पर भी पूजन की जा सकती है। उस यन्त्र में जितने दल हैं उन सबमें अलग-अलग देवताओं की पूजा होती है, जिसका विवेचन 'सिद्धमन्त्रामृत' भाग में किया गया है।

---

१. मन्त्र से पूर्व कवच-पाठ भी है जिसे स्तोत्र विभाग में दिया गया है।
२. यहां मां अथवा अमुक के स्थान पर जो बीमार हो उसके नाम के साथ द्वितीया विभक्ति का एकवचन जोड़कर भी जप किये जाने का विधान है।
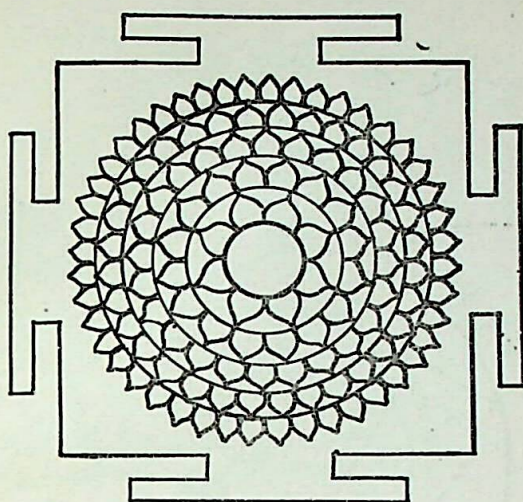
रुद्र-पूजन-यन्त्रम्

(८, १६, २४, ३२ तथा ४५ दलसंयुक्तं भूपुरान्वितम्)

मृत्युञ्जय-शिवयन्त्र

'क्रियोड्डीश-तन्त्र' में 'मृत्युञ्जय-शिवयन्त्र' का निर्माण करके उसकी पूजा और धारण करने से सब प्रकार के रोगों की शान्ति और मृत्यु से मुक्ति का विधान बताया है। तदनुसार यन्त्र की रचना षट्कोण, पञ्च-दल और अष्टदल से की जाती है। यन्त्र का स्वरूप (पृ० १०६) पर दिया गया है—

इस यन्त्र को भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर तैयार करके विधिवत् प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए। प्राण-प्रतिष्ठा का संक्षिप्त विधान भी वहीं इस प्रकार बतलाया है—

शुभ मुहूर्त में नित्यकर्म से निवृत्त होकर सर्वप्रथम स्वस्तिवाचन करे। गणपतिस्मरण, संकल्प, गुरुपूजा, गणपतिपूजा और शिवपूजा करके यन्त्र को पीठ पर स्थापित करे। प्राण-प्रतिष्ठा की प्रार्थना करके कागज का यन्त्र हो तो कुशा से मार्जन और चांदी, ताम्बे पर बना हो तो अभिषेक करे। पहले जल से, फिर पञ्चगव्य से, फिर पञ्चामृत से और

मृत्युञ्जय-शिव-यन्त्रम्
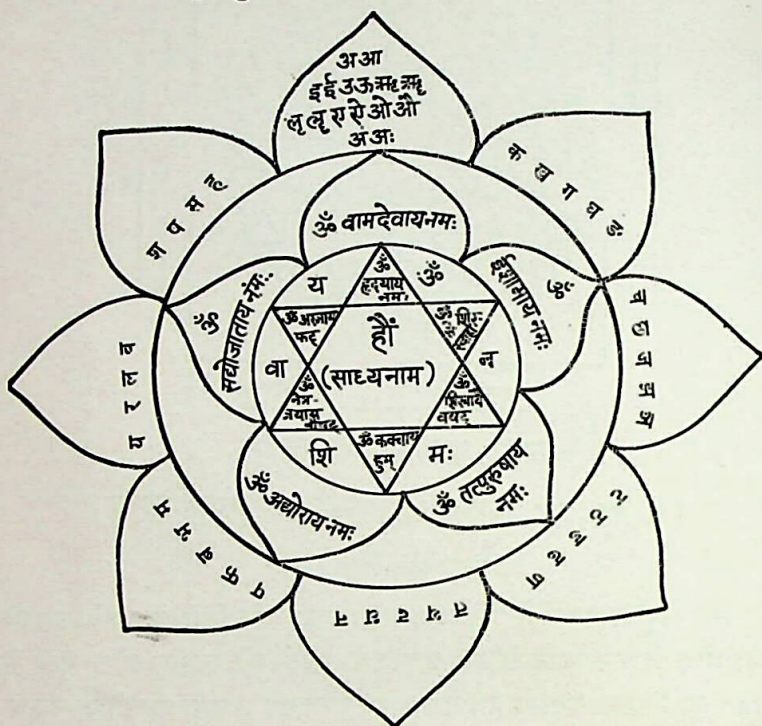
फिर गङ्गाजल से स्नान कराये। तदनन्तर सर्वौषधियुक्त जल से अभिषेक करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और दक्षिणा अर्पित करे। और कुशाग्र से यन्त्र का स्पर्श करके – **'यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि। तन्नो यन्त्र प्रचोदयात्।'** इस यन्त्रगायत्री का १०८ वार जप करे। तथा "आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं हौं हंसः मृत्युञ्जयदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः जीव इह स्थितः। सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः-श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।" इस मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करे।

इस मन्त्र की नित्यपूजा करने से अथवा धारण करने से सब प्रकार के रोगों की निवृत्ति और शारीरिक सुख प्राप्त होता है।

प्राणरक्षक-मृत्युञ्जय-यन्त्र

'यन्त्रचिन्तामणि' में भगवान् शिव ने अपने प्राणों की रक्षा के लिए 'मृत्युञ्जय-यन्त्र' का विधान बतलाया है। जब कोई क्रुद्ध शासक अथवा शत्रु घात करना चाहता हो, दिन-रात पीछे पड़ा रहता हो, तो आत्म-रक्षा के लिए भोजपत्र पर निम्नलिखित यन्त्र को दो पत्रों पर लिखे। जिसमें सात चतुष्कोण और चारों दिशाओं में उनके बाहर प्रत्येक दिशा में ३-३ कमलदल बनाएं तथा चार दिशाओं कोणों में त्रिशूलों के आकार बनाए। बीच में जिससे रक्षा अपेक्षित हो, उसका नाम लिखे तथा कमल-पत्रों में पश्चिम से आरम्भ कर दक्षिणावर्त क्रम से ल की बारहखड़ी का एक-एक अक्षर लिखे। यह लोहे की कलम से लिखना चाहिए।[1]

यन्त्र की आकृति इस प्रकार है—

---
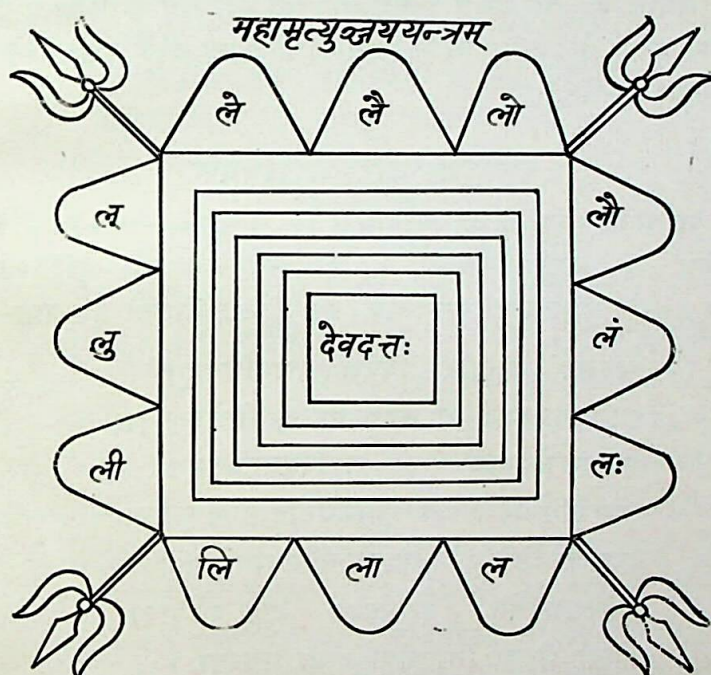
१. अन्य विधि 'यन्त्रशक्ति' भाग २ के अनुसार करें।

इसी यन्त्र को "धारण-यन्त्र" की विधि से तैयार करके प्रतिष्ठा-पूर्वक नित्य ताबीज के रूप में धारण भी किया जा सकता है। इसके धारण से सभी शत्रु अनुकूल होंगे। तदनन्तर साधक उत्तर की ओर मुख करके यन्त्र की पूजा-प्रतिष्ठा करे और बाद में उन्हें एक शिला पर रखकर दूसरी भारी शिला को दबा दे। ऐसा करने के पश्चात् यदि उस व्यक्ति के सामने जाएगा तो उसका क्रोध शान्त हो जाएगा। इतना ही नहीं वहां यह भी कहा गया है कि—

मृत्युञ्जयं महायन्त्रं प्राणरक्षाकरं परम्।
यदा कस्योपरि क्रुद्धः कालोऽपि हि दुरासदः ॥६।८॥
तदापि यन्त्रराजोऽयं रक्षत्येव न संशयः।

अर्थात् यह मृत्युञ्जय महामन्त्र प्राणों की रक्षा करने वाला है। इसका प्रताप एक बार काल के क्रोध को भी शान्त करके रक्षा करने में निःसन्देह समर्थ होगा।

रणदीक्षा और वीराभिषेक

'नरपतिजयचर्या' के शान्त्यध्याय में १—**मृत्युञ्जय मन्त्र, अभिषेक-विधि; २—मृत्युञ्जयकवच; ३—मृत्युञ्जयन्यास; ४—मृत्युञ्जय-मुद्रा ५—'मृत्युञ्जयनामयन्त्रविधि'** का उल्लेख मिलता है। यथा—

चतुरस्रं चतुर्द्वारं त्रिरेखं पद्मगर्भितम्।
हस्तत्रयप्रमाणं च तण्डुलैर्मण्डलं लिखेत् ॥१॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वावयवसंयुतम्।
मासभूमि-प्रवेशे च गोमयेनोपलेपितम् ॥२॥
पद्मपत्रे लिखेद् देवांश्चतुःषष्टिप्रमाणतः।
एकैकपद्मपत्रेषु वसुसंख्या दले दले ॥३॥
भैरवी भैरवाः सिद्धिर्ग्रहा नागा उपग्रहाः।
पीठोपपीठसंयुक्ता दिक्पालैश्च समन्विताः ॥४॥

कर्णिकायां न्यसेद् देवं शिवं साङ्गं सहस्रकम् ।
प्रणवादिनमोऽन्तैश्च नाममन्त्रैस्ततोऽर्चयेत् ।।५।।
मण्डलाग्रे लिखेत् पद्मं वीरं तत्र निवेशयेत् ।
तीर्थोदकान्वितैः कुम्भैः सदूर्वाक्षतपल्लवैः ।।६।।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण शतवाराभिमन्त्रितैः ।
अभिषिञ्चेत् ततो वीरं शुभलग्ने स्वरोदये ।।७।।

"ॐ जूं सः" इति मृत्युञ्जयमन्त्रः ।

अभिषिक्तस्ततो वीरः संग्रामे विजयी भवेत् ।
शस्त्रैर्न भिद्यते तस्य शरीरं शत्रुचोदितैः ।।
एतन्मण्डलमध्यस्थोऽभिषिक्तः पुरुषो यदि ।
ततः प्रभृति युद्धेषु शत्रुं जयति सर्वदा ।।
राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं क्षीणायुर्म्रियते न च ।
मुक्त्वा पीडां ग्रहाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्ति सर्वदा ।।
अभिषेकात् परं पूजा कर्तव्या पूर्वमण्डले ।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण पूर्वोक्तविधिना ततः ।।

"ॐ जूं सः"

पश्चात् समर्पयेन्मन्त्रं रणदीक्षा भवेदियम् ।
तया समन्वितो वीरस्त्रिदशैरपि दुर्जयः ।।

इसके अनुसार युद्ध में विजय तथा शरीर रक्षा के लिए शुद्ध भूमि पर एक मण्डल का निर्माण करे, जिसमें एक चतुष्कोण तीन रेखाओं वाले धान्य (सत्त्व-चावल, रज-गेहूं तथा तम-उड़द माष) से अथवा रंग से बनाये। इसमें चारों दिशाओं में चार द्वार रखे। बीच में एक अष्टदल कमल बनाये। इस मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तीन हाथ तक की हो। इकरंगे चावलों से भी यह बनाया जा सकता है। इस मण्डल में स्थित कमल की ८ पंखुड़ियों में क्रमशः ८ × ८ = ६४ देवताओं की स्थापना-पूजा करें। मध्य में भगवान् मृत्युञ्जय सदाशिव तथा उनके परिवार देवों की स्थापना-पूजा करे। बाहर भैरवी, भैरव, सिद्धियां, ग्रह, नाग, उपग्रह, पीठ, उपपीठ और दिक्पालों की प्रारम्भ में ॐ और अन्त में नमः लगाकर पूजा करे।

मण्डल - यन्त्रम्

मण्डल के सामने एक अष्टदल पद्म और बनाए तथा उस पर विजय के इच्छुक व्यक्ति को बिठाये तथा तीर्थजल, दूर्वा, अक्षत, पल्लव आदि से युक्त कलश को मृत्युञ्जय-मन्त्र 'ॐ जूं सः' से अभिमन्त्रित कर उसके जल से उसका अभिषेक करे।
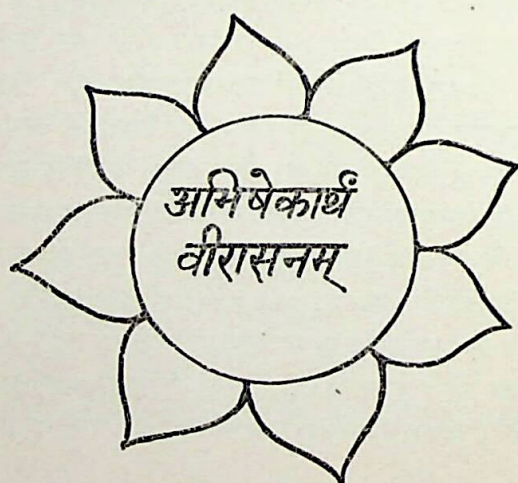
ऐसा करने से वह व्यक्ति युद्ध में विजयी होता है। उसके शरीर पर शत्रुओं के द्वारा किये गये शस्त्र-प्रहार विफल हो जाते हैं। उसे राज्य की प्राप्ति होती है। आयुष्य क्षीण होने पर भी उसकी मृत्यु नहीं होती। सभी ग्रह पीड़ा से मुक्त करके शान्ति करते हैं। अभिषेक के पश्चात् इस मन्त्र द्वारा मण्डल पर पूजा करनी चाहिए और मृत्युञ्जय यन्त्र उसे देकर धारण करवाना चाहिए। यह 'रणदीक्षा' का विधान है। ऐसा करने से वह देवताओं से भी पराजित नहीं होता।

इसी प्रकार अभिमन्त्रित 'रक्षासूत्र' कवच रूप में भी बांधा जाता है। प्राचीनकाल में ये सिद्ध प्रयोग किये जाते थे। आजकल 'कोई युद्ध में नहीं जाता' ऐसा समझकर उपेक्षा की जाती है किन्तु यह उचित नहीं। किसी भी विशेष कार्य की सिद्धि, निर्वाचन (चुनाव) में विजय, सभा में में विजय, मुकदमे में जीत, देश-विदेश की यात्राओं से पहले यह विधान करने से पूर्ण सफलता मिलती है और कोई विघ्न नहीं आता। मण्डल का चित्र (पृष्ठ ११०) इस प्रकार है—

मृत्युञ्जय-श्रीचक्र-पूजा

"महामृत्युञ्जय-पटल" में इस शिवात्मक श्रीचक्र का वर्णन किया है। वहीं त्रैलोक्यचिन्तामणि, दीक्षावल्लभ नामक भगवान् मृत्युञ्जय के मन्त्र का भी निर्देश है। इस प्रकार के मन्त्र को गुरु-परम्परा से दीक्षा प्राप्त करना भी अत्यावश्यक है। यन्त्र की रचना का प्रकार वहां इस प्रकार बतलाया है—

बिन्दुत्रिकोणषट्कोण — वृत्ताष्टदलमण्डितम्।
वृत्तत्रयं धरासद्म श्रीचक्रं शिवमीरितम्॥२७॥

इसके अनुसार बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण, वृत्त, अष्टदल, वृत्तचक्र और भूपुर से यह यन्त्र बनता है।

इसकी पूजा में श्रीयन्त्र-पूजा के अनुसार ही पात्रासादन तथा आवरण-पूजा होती है। यहां भगवती पार्वती 'अमृतेश्वरी' और भगवान् शिव अमृतेश्वर के रूप में पूज्य है। इसमें अनेक प्रकार के न्यास होते हैं। यह

विषय अतिविस्तृत एवं गुरुगम्य होने से हमने केवल संकेत मात्र दिया है। विशेष जानने के इच्छुक गुरु और ग्रन्थ का आश्रय लेकर ज्ञान प्राप्त करें। 'महामृत्युञ्जय-पटल' में भी इसका वर्णन है।

सिद्धतन्त्रामृत–३

३—सिद्ध मृत्युञ्जय-तन्त्र और उनके प्रयोग

वैसे तन्त्र शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थों वाला है। इसकी परिधि में लौकिक और पारलौकिक बहुत-सी क्रियाओं का समावेश हो जाता है। यहां इस शब्द का प्रयोग हम केवल साधना से सम्बन्ध रखने वाली विशिष्ट प्रक्रियाओं के बारे में ही करेंगे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि—'शास्त्रों में मन्त्र और यन्त्रों के साथ ही उनके प्रयोगों के लिए भी कुछ विशेष तन्त्र भी निर्दिष्ट हैं, जिनमें हवन, अभिषेक, कवच एवं न्यास, मुद्रा आदि आते हैं। इनमें हवन-विधि के अन्तर्गत हवनीय द्रव्यों का प्रयोग ही प्रमुख है जिनका उल्लेख शास्त्रों में इस प्रकार प्राप्त होता है—

१. दुग्धयुक्तैः सुधाखण्डैर्मन्त्री मासं सहस्रकम्।
आराधितेऽग्नौ जुहुयाद् विधिवद्विजितेन्द्रियः॥
सन्तुष्टः शङ्करस्तेन सुधाप्लावितविग्रहः।
आयुरारोग्यसम्पत्तियशः पुत्रान् विवर्धयेत्॥

कच्चे दूध के साथ गिलोय के टुकड़ों का मन्त्र द्वारा प्रतिदिन एक हजार आहुति से विधिपूर्वक अग्नि में जितेन्द्रिय होकर साधक हवन करे तो उससे अमृत से सुस्नात शरीर शिव जी प्रसन्न होकर आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, यश और पुत्रों की वृद्धि करते हैं।

२. शनिवार अथवा मंगलवार के दिन पीपल के नीचे बैठकर उसका स्पर्श करते हुए मृत्युञ्जय-मन्त्र का एक हजार जप करे। तत्पश्चात् दूब, बरगद के पत्ते अथवा जटा, जपापुष्प, कनेर के पुष्प, बिल्वपत्र, ढाक की समिधा, काली अपराजिता के पुष्प के साथ घृत मिलाकर दशांश हवन करें। ऐसा करने से शीघ्र ही रोग से मुक्ति और मृत्यु का निवारण होता है। रोग के उपचार की औषधि का भी हवन करें।

३. महामृत्युञ्जय-मन्त्र द्वारा नीम के पत्ते सरसों (कड़ुवे) के तेल में मिलाकर हवन करने से शत्रु नाश होता है।

४. सब प्रकार के अभिचार (दूसरों के द्वारा कराये गये मन्त्रादि प्रयोग) की शान्ति के लिए पञ्चगव्य (गोदुग्ध, दधि, घृत गोमय और गोमूत्र) से हवन करना चाहिए।

५. लालकनेर की जड़ नौ अंगुल मृगशीर्ष नक्षत्र के दिन लाये तथा उसको कीले के आकार में बनाकर मृत्युञ्जय-मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित करे और जिसको वश में करना हो, उसके नाम जमीन पर लिखकर उस पर कीला गाड़ दे। इससे साध्य व्यक्ति वश में हो जाता है।

६. साही के कांटे को जिनमें परस्पर द्वेष कराना हो उनके नाम जमीन पर लिखकर गाड़ने से आपस में झगड़ा हो जाता है।

७. महान् विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए जवापुष्प और विष्णुक्रान्ता के पुष्पों से हवन करना चाहिए।

८. मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए द्रोणपुष्प और कनेर के पुष्पों का हवन श्रेष्ठ कहा गया है।

९. रोग से मुक्त होने के लिए सफेद अथवा लाल चन्दन, द्रोणपुष्प तथा केवड़े के पुष्पों का हवन उत्तम है।

१०. पुत्र प्राप्ति के लिए चम्पा के पुष्प, श्वेत कमल, रक्तकमल, कनेर के पुष्प, बिल्वपत्र, कुरबक, अगस्त के पुष्प और केशर से हवन करना चाहिए।

११. सर्वसिद्धि के लिए रक्तकमल, धतूरे के पुष्प, और बिल्वपत्र का हवन किया जाता है।

१२. महामृत्युञ्जय-मन्त्र की सिद्धि के लिए जायफल से हवन करना उत्तम है।

१३. जन्मदिन पर क्रूरग्रहों की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय-मन्त्र से घृत, दूध और शहद मिलाकर उसमें दूर्वा डुबोकर हवन करना चाहिए।

महामृत्युञ्जय-पटल में सात वारों के हवन-प्रयोगों का विधान दिया गया है जिसके द्वारा यही मृत्युञ्जय मन्त्र १. स्तम्भन, २. मोहन,

३. मारण, ४. आकर्षण, ५. वशीकरण, ६. उच्चाटन, ७. शान्तिक और ८. पौष्टिक कर्मों का साधक होता है। जैसे रविवार को १०००० मन्त्र जप करके घृत, जौ, धतूरे के बीज या पुष्प से दशांश हवन करने पर स्तम्भन होता है। सोमवार को उतना ही जप करके घृत, जौ, लाजा और पत्ते वाली शाक से दशांश हवन करने पर मोहन होता है। मंगलवार को घृत, श्रीपर्णी, मधु, श्रीफल, और इमली से हवन करने पर शत्रुनाश होता है। बुधवार को जप करके घृत, शतावरी, त्रिकण्टक और बिल्वपत्र द्वारा हवन करने से आकर्षण होता है। गुरुवार को जप करके घृत, कमल गट्टे और चन्दन से हवन करने पर वशीकरण होता है। शुक्रवार को उच्चाटन के लिए श्मशान में हवन करना चाहिए। शान्ति के लिए घृत, दूध, बैंगन, धतूरे के पुष्प आदि से शनिवार को हवन किया जाता है।

ऐसे हो अन्य अनेक तन्त्र-प्रयोग महामृत्युञ्जय-मन्त्र द्वारा किये जाते हैं जिसमें भस्म-अभिमन्त्रण, जल अभिमन्त्रण कवच निर्माण, डोरे बनाना आदि प्रमुख हैं।

• • •

मृत्यु के सङ्कट से बचने का अमोघ उपाय

महामृत्युञ्जय-अभिषेक

जब रोगी अत्यन्त सङ्कट की स्थिति में होता है तब परिवार और आत्मीय जन बड़ी बेचैनी का अनुभव करते हैं। सभी अपनी-अपनी बुद्धि और योग्यता के अनुसार उपाय खोजने में और उसकी व्यवस्था में लग जाते हैं। कालों के भी काल महा-काल उससमय एक मात्र सहायक बनते हैं। शिव को प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह के उपाय होते हैं। उनमें **"१. महामृत्युञ्जय मन्त्र जप और २. रुद्राभिषेक"** ये दो प्रयोग प्रमुख होते हैं।

हमने प्रस्तुत पुस्तक में जप और उससे सम्बद्ध मन्त्रों के बारे में बड़े विस्तार से विचार किया है। अब यहां रुद्राभिषेक पर भी कुछ लिखना

तथा सूचित करना अपना कर्तव्य समझकर प्रमुख-प्रमुख विचार लिखते हैं।

अभिषेक क्या और कैसे ?

अभिषेक शब्द से तात्पर्य है—'स्नान करना अथवा कराना।' यह स्नान एक तो भगवान् मृत्युञ्जय-शिव को कराया जाता है और दूसरा नीरोग बनने के इच्छुक को। किन्तु अधिकांश आजकल इसका तात्पर्य रुद्राभिषेक से ही प्रसिद्ध है।

रुद्राभिषेक का अर्थ १. रुद्र=शिव का, शिवलिङ्ग पर अभिषेक और २. रुद्रमन्त्रों के द्वारा अभिषेक। इस प्रकार रुद्र पर अभिषेक करना—**"जलधाराप्रियः शिवः"** इस उक्ति को चरितार्थ करता है, साथ ही रुद्र-मन्त्रों का भी संकेत करता है।

रुद्रमन्त्रों का विधान वेदों में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से उद्धृत मन्त्रों से होता है। रुद्राष्टाध्यायी का इसमें आश्रय लिया जाता है। इसमें सभी प्रकार के मन्त्रों का समावेश है।

किन्तु कैवल्योपनिषद् और जाबालोपनिषद् में इसके बारे में बहुत स्पष्ट कहा गया है। कैवल्योपनिषद् में—"**यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्नि-पूतो भवति**" इत्यादि वचनों द्वारा 'शतरुद्रिय के पाठ से अग्नि, वायु, सुरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्ण चोरी, कृत्य एवं अकृत्य से पवित्र होने तथा ज्ञानप्राप्ति पूर्वक कैवल्यपद प्राप्ति तक का फल होता है' ऐसा ज्ञात होता है। जबकि जाबालोपनिषद् में कुछ ब्रह्मचारी महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि—"किसका जप करने से अमृतत्व प्राप्त होता है ?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि— "शतरुद्रियेणेत्येतान्येव ह वा अमृतस्य नामानि एतैर्ह वा अमृतो भवतीति।" अर्थात् शतरुद्रिय के पाठ से (इसके द्वारा अभिषेक करने से) अमृतत्व प्राप्त होता है। ये ही (शतरुद्रिय में आये हुए) नाम अमृत के नाम हैं। अतः शतरुद्रिय मन्त्रों से अभिषेक का बड़ा माहात्म्य है।

'शतरुद्रिय' से क्या तात्पर्य है ? यह प्रश्न भी स्वाभाविक है। अतः इसका उत्तर यह है कि इस सम्बन्ध में तीन मत प्राप्त होते हैं। यथा—

१. 'नमस्ते रुद्रमन्यव' इत्यादि १६ मन्त्रों का समूह ही शतरुद्रिय है। यह कमलाकर भट्टादि का मत है।

२. कुछ का मत है कि ६६ नील सूकन ('नमस्ते' से 'जम्भे दध्मः' तक), पुनः नमस्ते आदि १६ मन्त्र, एष ते २, नमस्ते, न तं विद् २ और मीढुष्टम ४ ये मन्त्र शतरुद्रिय में आते हैं।

३. और कुछ का कहना कि केवल नमस्ते आदि ६६ मन्त्र ही शतरुद्रिय हैं क्योंकि यहां शत का अर्थ असंख्यात है, सौ नहीं।

ऐसी स्थिति में अपनी गुरुपरम्परा का अनुसरण करते हुए शतरुद्रिय के पाठ द्वारा अभिषेक करना चाहिए।

● अभिषेक के लिए ग्राह्य वस्तु

अभिषेक साधारण रूप से तो जल से ही होता है। विशेष अवसर अथवा सोमवार, प्रदोष और शिवरात्रि आदि पर्व-दिनों में गोदुग्ध या अन्य दूध मिलाकर किंवा केवल दूध से भी अभिषेक होता है। विशेष पूजा में दूध, दही घृत, शहद और चीनी से अलग-अलग और सब मिला कर **पञ्चामृत** से भी अभिषेक किया जाता है। तान्त्रिक-प्रयोग की दृष्टि से रोगशान्ति में विभिन्न अन्य वस्तुओं से भी अभिषेक करने का विधान तन्त्रों में प्राप्त होता है। यथा—

१. अत्यन्त उष्णज्वर, मोतीझारा (टाइफाइड) में मठे (दही की छाछ) से अभिषेक करने पर अच्छा लाभ होता है।

२. शत्रु द्वारा यदि कोई अभिचार किया गया प्रतीत हो, तो सरसों के तेल से अभिषेक करना चाहिए।

३. आम्रफल के रस से, गन्ने (ईख) के रस से, मौसमी, सन्तरा नारियल एवं ऐसे अन्य फलों के रस एक साथ मिलाकर अथवा अलग-अलग रस से भी अभिषेक का विधान है। ऐसे अभिषेक से भगवान् शिव प्रसन्न होकर सब प्रकार की सुख शान्ति प्रदान करते हैं।

४. गवय—बैल के समान जंगली पशु के सींग को शुद्ध करके उसमें जलादि भर कर अभिषेक करना अत्यन्त शुभफलदायक है। इसके

अभाव में पीतल, ताम्र अथवा चांदी के शृंग द्वारा भी अभिषेक किया जा सकता है। इनमें आगे गोमुख बनाकर अथवा तीन, पांच, सात, ग्यारह छिद्र बनाकर तत् तत् संख्यक जलधाराभिषेक भी किये जाते हैं।

५. वर्षा न होने पर शतधारा और एक सहस्रधाराओं से अभिषेक करने से अवश्य जलवृष्टि होती है। बड़े घड़े में ये छिद्र बनाकर अभिषेक किया जाता है।

६. वैशाख ज्येष्ठ की गर्मी में शिव जी पर निरन्तर जलधारारूप अभिषेक करने के लिए गलतिका "गलन्तिका" का भी विधान है, जिससे घर में पूर्ण शान्ति रहती है।

७. गंगोत्तरी, जमनोत्तरी का जल लेकर रामेश्वर पर चढ़ाना और दक्षिण के समुद्रों का जल लाकर केदारेश्वर पर चढ़ाने से भी बहुत पुण्य लाभ होता है।

सर्वरोग शान्ति के लिए विशिष्ट दान

प्रायः ऐसा देखा गया है कि कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनका अनेक प्रकार से उपचार करने पर भी उनसे मुक्ति नहीं मिलती है। ऐसी स्थिति में चिकित्सा और जप के अतिरिक्त शास्त्रकारों की आज्ञा है कि—

तत्तद्दोषविनाशार्थं दानं कुर्याद् यथोदितम्।
प्रतिरोगं च यद्दानं जपहोमादि कीर्तितम्॥
प्रायश्चित्तं तु तत्कृत्वा चिकित्सामारभेत्ततः।
प्रदद्यात् सर्वरोगघ्नं छायापात्रं विधानतः॥

अर्थात्—कर्म दोषों से उत्पन्न रोगों की शान्ति के लिए जिन-जिन दानों का उल्लेख किया गया है, उनका दान करना चाहिए। प्रत्येक रोग के लिए दातव्य दान और जप-होमादि का जो निर्देश दिया है, उसका दान और प्रायश्चित्त करके चिकित्सा आरम्भ करे तथा सर्वरोगों के नाशक छायापात्र का विधानपूर्वक दान करें।

इस दृष्टि से यहां कुछ दान करने योग्य प्रयोगों का उल्लेख किया जा रहा है।

१—छायापात्र दान

६४ पल कांसे की कटोरी में घी भरकर उसमें सुवर्ण का टुकड़ा अथवा कुछ दक्षिणा डाल दे और फिर रोगी उस घी में अपनी छाया को देखे। छाया में पैर से लगाकर मुंह तक देखने का विधान है किन्तु अधिक न हो तो केवल मुंह देखे। फिर किसी ब्राह्मण को दान करे।

दान से पूर्व संकल्प करे जिसमें तिथि वारादि का स्मरण करके—

'मम दीर्घायुरारोग्यसुतेजस्वित्वप्राप्तिपूर्वकं शरीरगत (अमुक)-रोगनिवृत्तये अमुकनाम्ने ब्राह्मणाय सघृत-दक्षिणाकं छायापात्रदानमहं करिष्ये।'

इतना बोले और जल छोड़ दे। फिर पात्र की पूजा करे। पूजा का मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ आज्यं सुराणामाहारमाज्यं पापहरं परम्।
आज्यमध्ये मुखं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
घृतं नाशयते व्याधिं घृतं च हरते रुजम्।
घृतं तेजोऽधिकरणं घृतमायुः प्रवर्धते॥

इसके बाद—

आयुर्बलं यशो वर्चं आज्यं स्वर्णं तथामृतम्।
आधारं तेजसां यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

ऐसा कहकर पात्र ब्राह्मण को देकर प्रणाम करे।

२—रोग-प्रतिरूपदान

किसी पात्र अथवा वस्त्र में अपनी श्रद्धा के अनुसार सवाया तोल में चावल लेकर उसमें कुछ द्रव्य अथवा वस्तु रखे और रोगी के ऊपर २१ बार सिर से पैर तक उतारकर नीचे लिखा हुआ मन्त्र बोलकर ब्राह्मण को आदर पूर्वक दान कर दे। मन्त्र इस प्रकार है—

ये मां रोगाः प्रबाधन्ते देहस्थाः सततं मम।
गृह्णीष्व प्रतिरूपेण तान् रोगान् द्विजसत्तम॥

ब्राह्मण उसे लेकर कहे 'बाढम्'। दान के बाद ब्राह्मण को विदा कर दे और उसका मुंह नहीं देखे।

३—तुलादान

शरीर में किसी विशेष रोग ने यदि घर कर लिया हो और अनेक प्रकार के उपचार करने पर भी लाभ नहीं होता हो तो शास्त्रकारों ने सूर्य-चन्द्रग्रहण के अवसर पर तुलादान करने का विधान बताया है--

इस विधान में दो प्रकार के दान होते हैं। १. किसी एक ही वस्तु विशेष का अथवा २. अनेक प्रकार की मिली जुली वस्तुओं का। पहले राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, जमींदार आदि स्वर्णदान, भूमिदान आदि करते थे। अब भी नेताओं को उनके भार के बराबर स्वर्ण, सिक्के आदि से तौलने की प्रथा है किन्तु उसमें दिखावा अधिक है और शास्त्रीयता कम।

सर्व सामान्य रूप से तुलादान में दानकर्ता के वजन के बराबर स्वर्ण, चांदी, ताम्बा, पीतल, लोहा, जस्ता आदि धातु-पात्र, गेहूं, चावल, जुवार, मकई, बाजरा, उड़द, चने, मूंग, मसूर, अरहर, जौ, तिल आदि धान्य तथा श्वेत, लाल, पीत, कृष्ण-काले तथा हरे रंग के वस्त्र और अन्य फलादि (सूखे और हरे) मेवा आदि का दान एक पलड़े में दाता बैठे और दूसरे पलड़े में सब सामान रखकर तौल करके संकल्प पूर्वक देवे। अन्य विधि तुलादान-पद्धति के अनुसार करे। इसमें किसी योग्य विद्वान् कर्मकाण्डी का सहयोग प्राप्त करना उत्तम है।

अन्यदान—

जो व्यक्ति जप, पूजा, पाठ आदि करने में अशक्त हो तो उसे ऐसे दान-कार्य में श्रद्धा-पूर्वक मनोयोग देना चाहिए। हमारे यहां दान का महत्त्व बहुत अधिक विस्तार से बताया है। प्रत्येक ग्रह की प्रसन्नता के लिए भी दान दिये जाते हैं। इन सबकी जानकारी हमारे **"तन्त्रशक्ति"** ग्रन्थ से प्राप्त करें।

●●●

सिद्धकवचामृत-४

कवच-पाठ

पञ्चाङ्ग' में पटल, कवच आदि का जो निर्देश है वह सब मिल कर देवता के स्वरूप का पूरक होता है। प्राचीन तन्त्रों में कहा गया है कि—

पटलं देवतागात्रं पद्धतिर्देवता-शिरः।
कवचं देवता-नेत्रे सहस्रारं मुखं स्मृतम्।
स्तोत्रं देवि रसाः प्रोक्ता पञ्चाङ्गमिदमीरितम्॥

अर्थात्—पटल देवता का शरीर है, पद्धति देवता का मस्तक है, कवच देवता के नेत्र हैं, सहस्रनाम मुख है और स्तोत्र जिह्वा है। यही देवता के पांच प्रमुख अंग हैं, जिनका विधान पञ्चाङ्ग में होता है।

कवच का अर्थ 'दैवी-भावना को स्वयं में ग्रहण करना है'[1] तथा कुत्सित भावनाओं और अनिष्टकारी परिणामों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करना है। इसीलिए कवच में अंग-प्रत्यंग की रक्षा के लिए इष्ट देव के विभिन्न रूपों का न्यास करते हुए उनसे प्रार्थना की जाती है। ऐसे कवचों में बीजमन्त्र, मन्त्र तथा देवता के विशिष्ट नाम का स्मरण रहता है। अतः साधक की अपनी रक्षा के लिए जप से पूर्व कवच का पाठ करना चाहिए तथा न्यास की दृष्टि से भावना करनी चाहिए।

यहां **'मृतसञ्जीवनी-कवच'** तथा **'महामृत्युञ्जय-कवच'** के दोनों पाठ दिए जा रहे हैं। इनमें से जिस प्रकार के मन्त्र का जप करना हो, उसके अनुसार कवच का पाठ करना चाहिए।

श्रीमहादेव-प्रोक्तं[2]—

मृत-सञ्जीवनी-कवचम्

विनियोगः

अस्य श्रीमृतसञ्जीवनीकवचस्य श्रीमहादेव ऋषिः अनुष्टुप्-छन्दः

१—'कव् ग्रहणे' इत्यस्माद् धातोः कवचसम्भवः। कालीतन्त्र टीका, पृ० ११
२—यही कवच 'महर्षिवसिष्ठ-विरचित' भी कहा गया है।

श्रीमृत्युञ्जयरुद्रो देवता ॐ वीजं, जूं शक्तिः, सः कीलकम्, मम (अमुकस्य) रक्षार्थं कवचपाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

श्रीमहादेव-ऋषये नमः (शिरसि), अनुष्टुप्छन्दसे नमः (मुखे),
श्रीमृत्युञ्जयरुद्रदेवतायै नमः (हृदये), ॐ वीजाय नमः (गुह्ये),
जूं शक्तये नमः (पादयोः), सः कीलकाय नमः (नाभौ),
विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

('ॐ जूं सः' इस मन्त्र से करन्यास तथा हृदयादिन्यास करें)।

ध्यानम्　　(पूर्ववत्)

मूल कवचपाठ :—

वराभयकरो यज्वा सर्वदेव-निषेवितः।
मृत्युञ्जयो महादेवः प्राच्यां मां पातु सर्वदा ॥१॥
दधानः शक्तिमभयां त्रिमुखः षड्भुजः प्रभुः।
सदाशिवोऽग्निरूपी मामाग्नेय्यां पातु सर्वदा ॥२॥
अष्टादशभुजोपेतो दण्डाभयकरो विभुः।
यमरूपी महादेवो दक्षिणस्यां सदाऽवतु ॥३॥
खड्गाभयकरो धीरो रक्षोगणनिषेवितः।
रक्षोरूपी महेशो मां नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ॥४॥
पाशाभयभुजः सर्वरत्नाकर-निषेवितः।
वरुणात्मा महादेवः पश्चिमे मां सदाऽवतु ॥५॥
गदाभयकरः प्राणनाशकः सर्वदा गतिः।
वायव्यां मारुतात्मा मां शंकरः पातु सर्वदा ॥६॥
खड्गाभयकरस्थो मां नायकः परमेश्वरः।
सर्वात्मान्तरदिग्भागे पातु मां शंकरः प्रभुः ॥७॥
शूलाभयकरः सर्वविद्यानामधिनायकः।
ईशानात्मा तथैशान्यां पातु मां परमेश्वरः ॥८॥
ऊर्ध्वभागे ब्रह्मरूपी विश्वात्माऽधः सदाऽवतु।
शिरो मे शंकरः पातु ललाटं चन्द्रशेखरः ॥९॥
भ्रूमध्यं सर्वलोकेशस्त्रिनेत्रो लोचनेऽवतु।
भ्रूयुग्मं गिरिशः पातु कर्णौ पातु महेश्वरः ॥१०॥
नासिकां मे महादेवः ओष्ठौ पातु वृषध्वजः।
जिह्वां मे दक्षिणामूर्तिर्दन्तान् मे गिरिशोऽवतु ॥११॥
मृत्युञ्जयो मुखं पातु कण्ठं मे नागभूषणः।
पिनाकी मत्करौ पातु त्रिशूली हृदयं मम ॥१२॥

पञ्चवक्त्रः स्तनौ पातु जठरं जगदीश्वरः।
नाभिं पातु विरूपाक्षः पार्श्वौ मे पार्वतीपतिः ॥१३॥
कटिद्वयं गिरीशो मे पृष्ठं मे प्रमथाधिपः।
गुह्यं महेश्वरः पातु ममोरू पातु भैरवः ॥१४॥
जानुनी मे जगद्धर्ता जंघे मे जगदम्बिका।
पादौ मे सततं पातु लोकवन्द्यः सदाशिवः ॥१५॥
गिरीशः पातु मे भार्यां भवः पातु सुतान् मम।
मृत्युञ्जयो ममायुष्यं चित्तं मे गणनायकः ॥१६॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु कालकालः सदाशिवः।
एतत्ते कवचं पुण्यं देवतानां च दुर्लभम् ॥१७॥
मृतसञ्जीवनं नाम महादेवेन कीर्त्तितम्।
सहस्रावर्तनं चास्य पुरश्चरणमीरितम् ॥१८॥

महामृत्युञ्जय-कवचयन्त्रम्

मृत्युञ्जय-कवच

'क्रियोड्डीश तन्त्र' में एक अन्य कवच का निर्देश प्राप्त होता है। इस कवच के बारे में भगवती ने भगवान् शिव से कहा कि हे देव ! आप मुझे मृत्यु से रक्षा करनेवाला तथा सब प्रकार के अशुभों का नाश करने वाला 'कवच' बतलाइए। तब शिव जी ने निम्नलिखित कवच सुनाया—

विनियोगः—अस्य मृत्युञ्जयकवचस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीच्छन्दः मृत्युञ्जयो देवता साधकाभीष्टसिद्धचर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास:—वामदेव-ऋषये नमः (शिरसि) गायत्रीच्छन्दसे नम: (मुखे), मृत्युञ्जयदेवतायै नमः (हृदये), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

करहृदयाद्न्यासाः—ॐ जूं सः (इस मन्त्र से सभी न्यास करें।)

ध्यानम्—"हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैः" इत्यादि पद्य पहले छपा है, इससे ध्यान करे। तदनन्तर कवच पाठ करें—

शिरो मे सर्वदा पातु मृत्युञ्जयसदाशिवः।
स त्र्यक्षरस्वरूपो मे वदनं च महेश्वरः ॥१॥
पञ्चाक्षरात्मा भगवान् भुजौ मे परिरक्षतु।
मृत्युञ्जयस्त्रिबीजात्मा ह्यायू रक्षतु मे सदा ॥२॥
बिल्ववृक्षसमासीनो दक्षिणामूर्तिरव्ययः।
सदा मे सर्वदा पातु षट्त्रिंशद्वर्णरूपधृक् ॥३॥
द्वाविंशत्यक्षरो रुद्रः कुक्षौ मे परिरक्षतु।
त्रिवर्णात्मा नीलकण्ठः कण्ठं रक्षतु सर्वदा ॥४॥
चिन्तामणिर्बीजपूरे ह्यर्द्धनारीश्वरो हरः।
सदा रक्षतु मे गुह्यं सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥५॥
स त्र्यक्षरस्वरूपात्मा कूटरूपो महेश्वरः।
मार्तण्डभैरवो नित्यं पादौ मे परिरक्षतु ॥६॥
ॐ जूं सः महाबीजस्वरूपस्त्रिपुरान्तकः।
ऊर्ध्वमूर्धनि चेशानो मम रक्षतु सर्वदा ॥७॥
दक्षिणस्यां महादेवो रक्षेन्मे गिरिनायकः।
अघोराख्यो महादेवः पूर्वस्यां परिरक्षतु ॥८॥

वामदेवः पश्चिमस्यां सदा मे परिरक्षतु।
उत्तरस्यां सदा पातु सद्योजातस्वरूपधृक् ।।६।।

कवच पाठ का फल एवं विधि—

इस कवच का प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल शिवजी के सामने पाठ करने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है।

इस कवच का शिवरात्रि, सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण में पाठरूप पुरश्चरण करके भोजपत्र पर लाल स्याही से लिखे और धूप देकर तावीज में रखकर धारण करे। वैसे इसके एक लाख मूलमन्त्र (ॐ जूं सः) का जप करे तथा आदि अन्त में प्रतिदिन इस कवच का पाठ करने से भी पुरश्चरण होता है। यह कवच मृत्यु एवं सभी प्रकार के रोगों से छुड़ाने वाला है।

—×—

महामृत्युञ्जय-कवचम्

विनियोगः—

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जय-कवचस्य श्रीभैरवऋषिः गायत्री छन्दः श्रीमृत्युञ्जयरुद्रो देवता ॐ बीजं जूं शक्तिः सः कीलकं हौमिति तत्त्वं श्रीचतुर्वर्गफलसाधनाय पाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—

श्रीभैरव-ऋषये नमः (शिरसि), गायत्रीछन्दसे नमः (मुखे), श्रीमृत्युञ्जयरुद्रदेवतायै नमः (हृदये), ॐ बीजाय नमः(गुह्ये), जूं शक्तये नमः (पादयोः), सः कीलकाय नमः (नाभौ), हौं तत्त्वाय नमः (हृदि), विनियोगाय नमः (सर्वांगे)।

कर-षडंगादिन्यासाः—

'ॐ हौं जूं सः' इस मन्त्र से कर एवं हृदयादि षडंगन्यास करें।

ध्यानम्—

चन्द्रमण्डल-मध्यस्थे रुद्रमाले विचित्रिते।
तत्रस्थं चिन्तयेत् साध्यं मृत्युं प्राप्तोऽपि जीवति ।।१।।

अर्थात्—चन्द्रमण्डल के मध्य में विराजित एवं रुद्राक्षमाला से विभूषित ऐसे भगवान् मृत्युंजय का साधक ध्यान करे। इससे वे प्रसन्न होकर कृपा करते हैं तथा यदि साधक मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो वह भी जीवित हो उठता है।

अतः शिवजी का ध्यान करके निम्नलिखित कवच का पाठ करें—

ॐ जूं सः हौं शिरः पातु देवो मृत्युञ्जयो मम।
श्रीशिवो वै ललाटं च ॐ हौं भ्रुवौ सदाशिवः ॥२॥
नीलकण्ठोऽवतान्नेत्रे कपर्द्दी मेवताच्छ्रुती।
त्रिलोचनोऽवताद् गण्डौ नासां मे त्रिपुरान्तकः ॥३॥
मुखं पीयूषघटभृदोष्ठौ मे कृत्तिकाम्बरः।
हनुं मे हाटकेशानो मुखं बटुकभैरवः ॥४॥
कन्धरां कालमथनो गलं गणप्रियोऽवतु।
स्कन्धौ स्कन्दपिता पातु हस्तौ मे गिरिशोऽवतु ॥५॥
नखान् मे गिरिजानाथः पायादङ्गुलिसंयुतान्।
स्तनौ तारापतिः पातु वक्षः पशुपतिर्मम ॥६॥
कुक्षिं कुबेरवरदः पार्श्वौ मे मारशासनः।
शर्वः पातु तथा नाभिं शूली पृष्ठं ममावतु ॥७॥
शिश्नं मे शङ्करः पातु गुह्यं गुह्यकवल्लभः।
कटिं कालान्तकः पायादूरू मेऽन्धकघातकः ॥८॥
जागरूकोऽवताज्जानू जङ्घे मे कालभैरवः।
गुल्फौ पायाज्जटाधारी पादौ मृत्युञ्जयोऽवतु ॥९॥
पादादिमूर्धपर्यन्तं सद्योजातो ममावतु।
रक्षाहीनं नामहीनं वपुः पात्वमृतेश्वरः ॥१०॥
पूर्वे बलविकरणो दक्षिणे कालशासनः।
पश्चिमे पार्वतीनाथ उत्तरे मां मनोन्मनः ॥११॥
ऐशान्यामीश्वरः पायादाग्नेय्यामग्निलोचनः।
नैर्ऋत्यां शम्भुरव्यान्मां वायव्यां वायुवाहनः ॥१२॥
ऊर्ध्वे बलप्रमथनः पाताले परमेश्वरः।
दश दिक्षु सदा पातु महामृत्युञ्जयश्च माम् ॥१३॥

रणे राजकुले द्यूते विषमे प्राणसंशये।
पायादों जूं महारुद्रो देवदेवो दशाक्षरः ॥१४॥
प्रभाते पातु मां ब्रह्मा मध्याह्ने भैरवोऽवतु।
सायं सर्वेश्वरः पातु निशायां नित्यचेतनः ॥१५॥
अर्द्धरात्रे महादेवो निशान्ते मां महोदयः।
सर्वदा सर्वतः पातु ॐ जूं सः हौं मृत्युञ्जयः ॥१६॥

कवच-पाठ-फलम्—

इतीदं कवचं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
सर्वमन्त्रमयं गुह्यं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१७॥
पुण्यं पुण्यप्रदं दिव्यं देवदेवाधिदैवतम्।
य इदं च पठेन्मन्त्रं कवचं वाचयेत्ततः ॥१८॥
तस्य हस्ते महादेवि! त्र्यम्बकस्याष्टसिद्धयः।
रणे धृत्वा चरेद् युद्धं हत्वा शत्रून् जयं लभेत् ॥१९॥
जयं कृत्वा गृहं देवि! स प्राप्स्यति सुखं पुनः।
महाभये महारोगे महामारी—भये तथा ॥२०॥
दुर्भिक्षे शत्रुसंहारे पठेत् कवचमादरात्।

॥ इति महामृत्युञ्जयकवचम् ॥

सिद्धस्तोत्रामृत-५

सिद्ध मृत्युञ्जय-स्तोत्र और उनके प्रयोग

स्तोत्र उपासना का प्रमुख अंग है। पूजा के पांच अंगों में 'गीता, सहस्रनाम, स्तोत्र, कवच और हृदय' ये एक-दूसरे के पूरक माने गये हैं। महाकवि कालिदास ने **'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये ?'** यह कहकर सभी चराचर की प्रसन्नता का हेतु स्तोत्र है, ऐसा व्यक्त किया है। हमारे वेद, उपनिषद्, पुराण तथा तान्त्रिक साहित्य में इसीलिए स्तोत्रों की विपुलता प्राप्त होती है।

स्तोत्र में इष्टदेव के गुणों का स्मरण तथा अपनी आशा-आकांक्षा सुख-दुःख, याचना-प्रार्थना सभी का निवेदन आदि पर्याप्त रूप से प्रकट

किये जाते हैं। स्तोत्रकार अपनी भाषा में अपनी बात कहने के लिए यद्यपि स्वतन्त्र है, तथापि देवभाषा-संस्कृत में निर्मित स्तोत्रों की छटा, पद्धति एवं संरचना उत्तरोत्तर अभिनव होने से उनका अपना विशेष महत्त्व है।

विभिन्न प्रतिभा-सम्पन्न भक्त-स्तोत्रकारों ने ऐसे अनेक प्रकार के स्तोत्रों की सृष्टि की है, जिनमें साहित्यशास्त्र की आलंकारिकपद्धति, उपासनाशास्त्र की मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र-गर्भित पद्धति, भक्तिशास्त्र की 'श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन, रूप नवधा भक्ति'[1] की पद्धति एवं 'परमपद सोपान'[2] रूप विवेक, निर्वेद, विरक्ति और भीति नामक भक्ति के अंगों का प्रतिपादन, प्रति-वेदन सहजभाव से प्रस्फुटित होता रहा है।

श्रद्धा-जागरण का अमोघ उपाय स्तोत्रपाठ है। आत्म-विश्वास में दृढ़ता लाने के लिए तन्मयता से स्तोत्र पाठ करना अत्यावश्यक है। मन्त्राक्षरों तथा विशिष्ट नामों से गर्भित स्तोत्रों के पाठ से मन्त्रजप और देवस्तुति दोनों साथ-साथ सम्पन्न होते रहते हैं, इससे मानसिक शक्ति का विकास तथा भगवत् कृपा-प्रसाद मिलने में सरलता आ जाती है।

इन्हीं सब गुणों को ध्यान में रखकर हमने इस संग्रह में भगवान् महामृत्युञ्जय के स्तोत्रों का भी संकलन किया है तथा 'कुलार्णव-तन्त्र' के—

'स्तोकस्तोकेन मनसः परमप्रीतिकारणात्।
स्तोत्रसन्तरणाद् देवि, स्तोत्रमित्यभिधीयते ॥१७७०॥

अर्थात्—स्तोत्र से मन धीरे-धीरे निर्मल होता है और इष्टदेव के प्रति प्रीति—(आकर्षण) उत्पन्न होती है, जिससे स्तोत्र-स्रोत सांसारिक प्रवाह से निस्तार होकर उसी इष्ट में विलय हो जाता है, अतः उसे **'स्तोत्र'** कहते हैं।' ये वचन भी इसमें प्रेरक रहे हैं।

---

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ भागवत, ७।५।२३ ॥

२. वेदान्तदेशिक द्वारा निर्मित ग्रन्थ।

सर्वसाधारण की सुविधा के लिए प्रत्येक स्तोत्र के पहले हिन्दी भाषा में साररूप में अर्थ भी दिया गया है जिससे पाठ के समय अर्थानुसन्धान भी हो सके।

१-महामृत्युञ्जय स्तोत्र

यह स्तोत्र **'रुद्रयामल'** से लिया गया है। इसमें कुल २५ पद्य हैं, जिनमें प्रारम्भ के पांच पद्यों में श्रीभैरव ने कहा है कि—हे देवि ! मैं तुम्हें सर्वसिद्धिप्रद, मूलमन्त्र का सर्वस्व, प्रयत्नपूर्वक रक्षणीय, दीक्षा, पूजा, जप, आवाहन, विसर्जन आदि में पढ़ने योग्य स्तोत्र कहता हूं। ऐसा कहकर आगे स्तोत्र के ऋषि, छन्द आदि का वर्णन किया है। ध्यान के तीन श्लोक हैं जिनमें—चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपी तीन नेत्र वाले, प्रसन्नमुख, कमल में विराजमान, मुद्रा-पाश-सुधा-अक्षमाला से युक्त चार हाथों वाले, चन्द्र की किरणों के समान सुन्दर, अमृतमूर्ति, हारादि से विभूषित, विश्व को मुग्ध करने वाले पशुपति मृत्युञ्जय की भावना की गई है। दूसरा पद्य अमृतकलशधारी, अमृतमय एवं अमृतवर्षक आदि नामों से युक्त शिव से प्रसन्न होने की प्रार्थना प्रस्तुत करता है। तीसरे पद्य में आदिदेव मृत्युञ्जय के स्वरूप का निरूपण करते हुए उन्हें प्रणाम किया गया है।

तदनन्तर स्तोत्र के पन्द्रह पद्यों में क्रमशः भगवान् रुद्र के विभिन्न प्रकार के ध्यान और बीजमन्त्रों के स्मरण से प्राप्त होने वाले फलों का संकेत दिया है। जिसमें जीवन-प्राप्ति, वैभव, वाणी, शिवसायुज्य, परम-पद, रण-विजय, साम्राज्य, वशीकरण आदि प्राप्ति के पृथक्-पृथक् विधान हैं। एक पद्य से यन्त्र बनाने का संकेत भी किया है। दो श्लोकों से प्रणाम करके अन्त में प्रस्तुत स्तोत्र के पाठ का फल दिया है। इस प्रकार यह स्तोत्र **'मन्त्र-यन्त्र-विधान गर्भित'** है और 'मन्त्रों की महिमा-वर्णित होने से वे मन्त्र-बीज प्रसन्न होकर उक्त फल देते हैं, ऐसा समझकर इसका पाठ करना चाहिए। यह तान्त्रिक स्तोत्र है, अतः इसके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति और कीलक-पूर्वक विनियोग तीनों प्रकार के न्यास एवं ध्यान भी दिए हैं।यथा—

विनियोग:

अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रराजस्य भैरवऋषिः गायत्रं छन्दः महामृत्युञ्जयो देवता प्रणवो बीजं शक्तिः शक्तिः हृज्ज्ञं कीलकं सूर्यो दिग्बन्धनं श्रीमहामृत्युञ्जयप्रीतिपूर्वकं भोगापवर्गसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

भैरव-ऋषये नमः (शिरसि),　　गायत्र-छन्दसे नमः (मुखे),
महामृत्युञ्जयदेवतायै नमः (हृदये), प्रणव-बीजाय नमः (गुह्ये),
शक्ति-शक्तये नमः (पादयोः),　　हृज्ज्ञकीलकाय नमः (नाभौ)
विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

('ॐ जूं सः' इन बीजमन्त्रों से करन्यास तथा षडङ्गन्यास करें। तदनन्तर निम्नलिखित तीन पद्यों से ध्यान करके स्तोत्र पाठ करें।)

ध्यानम्

चन्द्रार्काग्नि-विलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं,
मुद्रा-पाश-सुधाक्षसूत्र-विलसत् पाणी हिमांशुप्रभम्।
कोटीचन्द्रगलत् सुधाद्भुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं,
भ्रान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावये॥१॥
पीयूषांशु-सुधामणिः करतले पीयूषकुम्भं वहन्,
पीयूषद्युतिसम्पुटान्तरगतः पीयूषधाराधरः।
मां पीयूषमयूखसुन्दरवपुः पीयूषलक्ष्मीसखा,
पीयूषद्रववर्षणस्त्वहरहः प्रीणातु मृत्युञ्जयः॥२॥

देवं दिनेशाग्निशशाङ्कनेत्रं,
पीयूषपात्रं कलशं दधानम्।
दोर्भ्यां सुधांशुद्युतिमिन्दुचूडं,
नमामि मृत्युञ्जयमादिदेवम्॥३॥

इस प्रकार ध्यान करके मानसपूजा पूर्वक स्तोत्र पाठ करें।

स्तोत्रपाठः

चन्द्रमण्डल-मध्यस्थं रुद्रं भालेऽतिविस्तृते ।
तत्रस्थं चिन्तयेत् साध्यं मृत्युप्राप्तोऽपि जीवति ॥१॥
मात्राद्यं मातृकामौलिं वेदकल्पतरोः फलम् ।
यो जपेत् स भवेद् विश्ववैभवास्पदमीश्वरि ॥२॥
कूर्चं बीजं कुलाचार-विचार-कुशलः शिवः ।
यो जपेत् तस्य वक्त्राब्जे नरीनर्ति हि भारती ॥३॥
देवेशाकाश-बीजान्ते बिन्दुबिम्बेन्दुमण्डितम् ।
चिन्तयेद् यो विभो चित्ते स शिवाद्वयतां लभेत् ॥४॥
हृस्विसर्गं भृगुं भर्गं सर्व-प्रलयकारणम् ।
निसर्गतो भजेद् योऽन्तर्लीयते स परे पदे ॥५॥
लक्ष्मीशब्दाक्षरं बिन्दुभूषणं यो जपेत् तव ।
करे लक्ष्मीर्मुखे वाणी तस्य शम्भो रणे जयः ॥६॥
पालयेति युगं देव ! यो जपेद् बीजसन्निधौ ।
स सार्वभौमं साम्राज्यं भजेदन्ते स लोकताम् ॥७॥
शरदं वरदां वीर माधवीं सविसर्गकाम् ।
जपेद् यः शरदम्भोदधवलं तद् वशी भ्रमेत् ॥८॥
आकाशबीजं साकाशं जपेद् यः कुशसंस्तरे ।
स कौलिकशिरो-रत्न-रञ्जिताङ्घ्रियुगो भवेत् ॥९॥
शङ्काबीजं सरेफस्कं शम्भो पद्मासने जपेत् ।
कङ्कालमालाभरणे भविता भैरवोपमः ॥१०॥
हृज्ज्ञबीजं जगद्बीजं तेजोरूपं च यो जपेत् ।
तस्मै दास्यामि भो शम्भो ! निजं धाम सनातनम् ॥११॥
अकारं साकारं गिरिश ! तव मन्त्राञ्चलगतं,
जपेद् यो हृत्पद्मे निरुपम-परानन्दमुदितः ।
स साम्राज्यं भूमौ भजति रजनीनायक कला—
लसन्मौलिप्रान्ते व्रजति शिवसायुज्यपदवीम् ॥१२॥
बिन्दुभूषणत्रिकोणरसार-स्वारणस्फुरदजारत्रिवृत्ते ।
भूगृहाद्यमिति चक्रमण्डले, त्वां निषण्णमुषसि स्मराम्यहम् ॥१३॥

नानाविधानर्घ्यविभूषणाढ्यं, निःशेषपीयूषमयूखबिम्वे।
निषण्णमीशानमशेषशेषवाणीनुतं मृत्युहरं नमामि ।।१४।।
इति स्तोत्रं दिव्यं सकलमनुराजैकनिकषं,
पठेद् यः पूजान्ते शिव ! शिवगृहे वार्चनविधौ।
रणे जित्वा वैरान् भजति नृपलक्ष्मीं स्वमहसा,
भवेदन्ते वीरः सकलसुरसेव्यः शिवमयः ।।१५।।

२—मार्कण्डेय-प्रोक्त चन्द्रशेखराष्टक स्तोत्र

[अपरनाम—मृत्युनिवारण-शिवस्तोत्र]

पद्म-पुराण (उत्तर २३७/७५-९०) में मार्कण्डेय मुनि द्वारा भगवान् महामृत्युञ्जय की स्तुति में गाया गया यह 'चन्द्रशेखराष्टक' एवं ग्यारह अनुष्टुप्-पद्यों में निर्मित एक अन्य स्तोत्र वर्णित हैं। इन स्तोत्रों के प्रसंग में वहां एक कथानक भी प्रस्तुत हुआ है, जो इस प्रकार है—

महामुनि मृगशृङ्ग के पौत्र तथा मुनिप्रवर मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय मुनि ने एक वार अपने पूज्य पिता को चिन्तित देखकर उनकी चिन्ता का कारण पूछा, जिसके उत्तर में उन्होंने कहा कि—तुम्हारी माता मरुद्वती के कोई सन्तान न होने से हम दोनों ने तपस्या करके शिव जी को प्रसन्न किया था। उन्होंने गुणज्ञ, सर्वज्ञ एवं अद्भुत किन्तु केवल सोलह वर्ष की आयु वाला पुत्र अथवा गुणहीन दीर्घजीवी पुत्र इन दोनों में से किसी एक की प्राप्ति के लिए वर मांगने को कहा। मैंने मूर्खपुत्र की अपेक्षा गुणीपुत्र को उत्तम मानकर अल्पायु वाले तुम जैसे पुत्र को प्राप्त किया। अब तुम्हारा आयुष्य पूर्ण होने आया है। यही सोचकर मैं चिन्तित हूं।

मार्कण्डेय ने आयु वढ़ाने का उपाय पूछा, तो पिता ने 'महामृत्युञ्जय की उपासना' का उपदेश दिया। तदनुसार ही मार्कण्डेय ने कठोर तप किया और भगवान् महामृत्युञ्जय की आराधना की, जिस दिन आयु पूर्ण हुई, यमराज आये और गले में यमपाश डालकर उन्हें ले जाने लगे। मार्कण्डेय ने कहा—'मुझे अपने इष्टदेव की पूजा कर लेने दो, कुछ समय बाद चलूंगा।' इस पर यम ने क्रोध किया और कहा कि 'काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता' तथा पाश से खींचने लगा। उसी समय भगवान्

शिव ने प्रकट होकर यम के वक्ष पर त्रिशूल से प्रहार करना चाहा। तभी यमराज ने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी और मार्कण्डेय के अल्पायु की पूर्ति होने की बात कही। भगवान् शिव ने यमराज को आदेश दिया कि जिसने मेरी शरण प्राप्त करली है, उसे ले जाने का कोई अधिकार नहीं है, चाहे वह अल्प आयुवाला हो अथवा उसके अन्य कोई कारण हों। अतः जाओ और भविष्य में ऐसी त्रुटि न हो, यह ध्यान रहे।

यह स्तोत्र ऐसे ही समय पर मार्कण्डेय मुनि द्वारा बनाया गया है। इसमें प्रत्येक पद्य का चौथा चरण समान है। उसमें कहा गया है कि—**'मैं भगवान् चन्द्रशेखर की शरण में हूं। मेरा यमराज क्या कर सकेगा?'** प्रथम ध्रुवपदरूप दो पंक्तियों से चन्द्रशेखर प्रभु का तीन-तीन बार नाम-स्मरण करते हुए **'मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो'** ऐसी प्रार्थना की गई है।

पूरे स्तोत्र में भगवान् सदाशिव के—कैलाश पर विराजमान, गौर-वर्ण, सर्पादिधारण, त्रिपुरदाह, देवताओं से वन्दित, पुष्पों से पूजित, तृतीय नेत्राग्नि से कामदाह, भस्मलेपन, गजचर्मधारण, पङ्कजासन, पद्मलोचन, गंगाधारण, कुवेर के मित्र, वामाङ्ग में पार्वती से विभूषित, नीलकण्ठ, परशु और मृगधारी, वृषवाहन, नारदादि वन्दित, अन्धकासुरान्तक, भव-रोग से पीडितजनों के लिए औषधरूप, दक्षयज्ञविध्वंसक, भक्तिमुक्ति-दायक, पापनाशक, भक्तवत्सल, अष्टमूर्ति, विश्वविधाता, अपने पुत्र गणनाथादि से परिवारित-स्वरूप, चरित्र आदि का वर्णन हुआ है।

अन्त में मृत्यु के भय से मृकण्ड मुनि के पुत्र द्वारा रचित इस स्तोत्र के पाठ का फल बतलाया है, जिसमें कहा गया है कि शिव के समक्ष अथवा कहीं भी इसका जो पाठ करता है, उसको मृत्यु का भय नहीं रहता और भगवान् शिव उसे सरलता से मुक्ति प्रदान करते हैं। इसका छन्द गाने के योग्य है, अतः भक्तिपूर्वक लय से इसका पाठ करें।

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम्।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम्॥

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं,
सिञ्जिनीकृत-पन्नगेश्वरमच्युताननसायकम्।

क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरपि वन्दितं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥१॥ चन्द्र०॥
पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्वुजद्वय - शोभितं,
भाललोचनजातपावक-दग्धमन्मथविग्रहम् ।
भस्मदिग्ध-कलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥२॥ चन्द्र०॥
मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीय - मनोहरं,
पंकजासन-पद्मलोचन-पूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्।
देवसिन्धु—तरङ्ग -सीकर-सिक्त-शुभ्रजटाधरं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥३॥ चन्द्र०॥
यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजङ्ग-विभूषणं,
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं;
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥४॥ चन्द्र०॥
कुण्डलीकृत-कुण्डलेश्वर-कुण्डलं वृषवाहनं,
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्धकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥५॥ चन्द्र०॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं,
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्ति-मुक्तिफलप्रदं सकलाघसङ्घनिवर्हणं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥६॥ चन्द्र०॥
भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं,
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।
सोम-वारिद-भू-हुताशन-सोमपानिलखाकृतिं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥७॥ चन्द्र०॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं,
संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं,
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥८॥ चन्द्र०॥

मृत्युभीत-'मृकण्ड-सूनु'-कृतस्तवं शिवसन्निधौ,
यत्र कुत्र च यः पठेन्नहि तस्य मृत्युभयं भवेत् ।
पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं ,
चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥६॥ चन्द्र०॥

३-मार्कण्डेय-प्रोक्त-मृत्युशमन-मृत्युञ्जय-स्तोत्र

मार्कण्डेय मुनि द्वारा वर्णित एक और स्तोत्र आगमों में तथा **"मृत्युञ्जय-पञ्चाङ्ग"** में प्रसिद्ध है। यह लघु स्तोत्र है। मृत्यु के भय को मिटाने वाला है। इसमें सबसे बड़ी महत्त्व की बात यह है कि प्रार्थना करते हुए भक्त के मन में यह दृढ़ विश्वास बन जाता है कि—**"मैंने भगवान् रुद्र का आश्रय ले लिया है। अब मेरा मृत्यु-यमराज कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"** ११ पद्यों के इस स्तोत्र में १० पद्यों के अंतिम चरणों में **"किं नो मृत्युः करिष्यति"** (मृत्यु मेरा क्या करेगा) यह अभय वाक्य जुड़ा हुआ है। इसके पाठ से पूर्व विनियोग इस प्रकार करें—

ॐ अस्य श्रीसदाशिवस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेय ऋषिः अनुष्टुप्-छन्दः श्रीसदाशिवो देवता गौरी शक्तिः मम समस्तमृत्युशान्त्यर्थे जपे विनियोगः ।

इसके बाद "ॐ नमः शिवाय" मंत्र से करन्यास तथा अंगन्यास करें और ध्यान करके पाठ करें।

रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥१॥
नीलकंठं विरूपाक्षं निर्म्मलं निरुपद्रवम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥२॥
कालकण्ठं कालमृत्युं कालाग्निं कालनाशनम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥३॥
देवदेवं महादेवं देवेशं वृषभध्वजम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥४॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥५॥

अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।।६।।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।।७।।
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारकम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।।८।।
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।।९।।
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च शङ्करं शूलपाणिनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ।।१०।।
मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।११।।

—×—

शतावर्तं प्रकर्तव्यं संकटे कष्टनाशनम्।
शुचिर्भूत्वा पठेत् स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।

अधिक सङ्कट आने पर पवित्रता-पूर्वक इस स्तोत्र के सौ पाठ करने से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।

४-नृसिंह-पुराणोक्त-श्रीमार्कण्डेयकृत
अकालमृत्युहर-विष्णु-मृत्युञ्जय-स्तोत्र

"नृसिंह-पुराण" में मार्कण्डेय द्वारा भगवान् विष्णु को मृत्युञ्जय स्वरूप मानकर मृत्यु से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्तुति की गई है। इसके वारे में लिखा है कि "जब मुनि मृत्यु के भय से बहुत त्रस्त हो गए थे और कोई उपाय नहीं सूझ रहा था तो भगवान् विष्णु ने स्वयं मार्कण्डेय मुनि के कान में यह स्तोत्र कहा था और इसके पाठ की प्रेरणा दी थी। वैष्णव भक्तों के लिए यह स्तोत्र पठनीय है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय—
नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम्।
प्रणतोऽस्मि हृषीकेशं किं मे मृत्युः करिष्यति ।।१।।

गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम् ।
केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्यु: करिष्यति ।।२।।
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् ।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्यु: करिष्यति ।।३।।
पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम् ।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्यु: करिष्यति ।।४।।
भूतात्मानं महात्मानं जगद्योनिमयोनिजम् ।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्यु: करिष्यति ।।५।।
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं मे मृत्यु: करिष्यति ।।६।।

इस स्तोत्र के पाठ का फल बताते हुए वहीं लिखा है कि—

मार्कण्डेयो ह्युवाचैवं स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ।।१।।
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ।।२।।
मार्कण्डेय-हितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ।
इदं मृत्युञ्जयस्तोत्रं मृत्युव्याधि-विनाशनम् ।।३।।
य इदं पठते भक्त्या त्रिकालं प्रयत: शुचि: ।
नाकाले तस्य मृत्यु: स्याद् नरस्याच्युतचेतसः ।।४।।

५—शिवब्रह्मसंवादे महर्षिलोमश-कृता

श्रीमहामृत्युञ्जय-स्तुतिः

पुराणों में दीर्घजीवी ऋषियों की जो विशेष परम्परा है उसमें लोमश ऋषि का नाम सर्वोपरि है। इन ऋषि ने भगवान् मृत्युञ्जय की कृपा से दीर्घजीवन प्राप्त किया था। एक-एक कल्प की समाप्ति पर इनका एक-एक लोम-केश झड़ता है। ऐसे दीर्घजीवी ऋषि के बारे में ब्रह्माजी ने शिवजी से पूछा कि वे ऐसे दीर्घायु कैसे बने ? तब शिवजी ने कहा कि उन्होंने प्रलयकाल में समुद्र में स्थिर होकर मृत्युञ्जय की स्तुति की थी उसी का यह फल है और वह स्तुति बतलाई। इसमें मृत्युञ्जय शिव के

अनेक रूपों का वर्णन करते हुए २६ पद्यों से उन्हें प्रणाम किया गया है। प्रत्येक पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा को इस स्तोत्र के १०० पाठ करने से सर्वविध शान्ति प्राप्त होती है। स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ देवाधिदेव देवेश सर्वप्राणभृतां वर।
प्राणिनामपि नाथस्त्वं मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते ।।१।।
देहिनां जीवभूतोऽसि जीवो जीवस्य कारणम्।
जगतां रक्षकस्त्वं वै मृत्युं जेतुं न संशयः ।।२।।
हेमाद्रिशिखराकार सुधावीचि-मनोहरे।
पुण्डरीकः परं ज्योतिर्मृत्युं जेतुं न संशयः ।।३।।
ध्यानाधार महाज्ञान सर्वज्ञानैककारण।
परित्रातासि लोकानां मृत्युं जेतुं न संशयः ।।४।।
निहता येन कालेन सदेवासुरमानुषाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धविद्याधरास्तथा ।।५।।
साध्याश्च वसवो रुद्रास्तथाश्विनिसुतावुभौ।
मरुतश्च दिशो नागाः स्थावरा जङ्गमास्तथा ।।६।।
मदनो दहनार्थं हि प्राक्षिपद् बाणराशयः।
जितः सोऽपि त्वया ध्यानाद् मृत्युं जेतुं न संशयः ।।७।।
ये ध्यायन्ति परां मूर्तिं पूजयन्त्यमरादयः।
न ते मृत्युवशं यान्ति मृत्युं जेतुं न संशयः ।।८।।
त्वमोङ्कारोऽसि वेदानां देवानां च सदाशिवः।
आधारशक्तिश्च शक्तीनां मृत्युं जेतुं न संशयः ।।९।।
स्थावरे जङ्गमे वापि यावत्तिष्ठति देहगः।
जीवत्यपत्यलोकोऽयं मृत्युं जेतुं न संशयः ।।१०।।
सोमसूर्याग्निमध्यस्थ व्योमव्यापिन् सदाशिव।
कालत्रयमहाकाल मृत्युं जेतुं न संशयः ।।११।।
प्रबुद्धे चाप्रबुद्धे च त्वमेव सृजसे जगत्।
सृष्टिरूपेण देवेश मृत्युं जेतुं न संशयः ।।१२।।
व्योम्नि त्वं व्योमरूपोऽसि तेजः सर्वत्र तेजसि।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपोऽसि मृत्युं जेतुं न संशयः ।।१३।।

जगज्जीवो जगत्प्राणः स्रष्टा त्वं जगतः प्रभुः ।
कारणं सर्वतीर्थानां मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१४॥
नेता त्वमिन्द्रियाणां च सर्वज्ञान-प्रबोधकः ।
साङ्ख्ययोगश्च हंसश्च मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१५॥
रूपातीतः सुरूपश्च पिण्डस्थः पदमेव च ।
चतुर्योगकलाधार मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१६॥
रेचके वह्निरूपोऽसि सोमरूपोऽसि पूरके ।
कुम्भके शिवरूपोऽसि मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१७॥
क्षयङ्करोऽसि पापानां पुण्यानामसि वर्द्धनः ।
हेतुस्त्वं श्रेयसां नित्यं मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१८॥
सर्वमाया-कलातीतः सर्वेन्द्रिय-परावरः ।
सर्वेन्द्रिय-कलाधीशो मृत्युं जेतुं न संशयः ॥१९॥
रूपं गन्धो रसः स्पर्शः शब्दः संस्कार एव च ।
त्वत्तः प्रकाश एतेषां मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२०॥
चतुर्विधानां सृष्टानां हेतुत्वं कारणेश्वर ।
भावाभाव-परिच्छिन्न मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२१॥
त्वमेको निष्कलो लोके सकलं भुवनत्रयम् ।
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं हि मृत्युं न जेतुं संशयः ॥२२॥
त्वं सोमस्त्वं दिनेशश्च त्वमात्मा प्रकृतेः परः ।
अष्टत्रिंशत्कलानाथ मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२३॥
सर्वेन्द्रिय-समाधारः सर्वभूतगुणाश्रयः ।
सर्वज्ञानमयानन्त मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२४॥
त्वमात्मा सर्वभूतानां गुणानां त्वमधीश्वरः ।
सर्वानन्दमयाधार मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२५॥
त्वं यज्ञः सर्वयज्ञानां त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणम् ।
शब्दब्रह्म त्वमोङ्कारो मृत्युं जेतुं न संशयः ॥२६॥

तथा इस स्तोत्र के पाठ का फल बतलाते हुए भगवान् सदाशिव ने वहीं कहा है कि—

एवं सङ्कीर्तयेद्यस्तु शुचिस्तद्गतमानसः ।
भक्त्या शृणोति यो ब्रह्मन् न स मृत्युवशो भवेत् ॥१॥

न च मृत्युभयं तस्य प्राप्तकालं च लंघयेत्।
अपमृत्युभयं तस्य प्रणश्यति न संशयः ॥२॥

—×—

७---परमायुःप्रद उपमन्युकृत
शिवस्तोत्र

पुराणप्रसिद्ध अनन्य शिवभक्त बालक उपमन्यु का चरित्र अद्भुत है। वचपन में ही दरिद्रता से दुःखित इनके पिता ने मृत्यु का वरण कर लिया था। इनकी माता ने इनका लालन-पालन करने के लिए अपने भाई की शरण ली। वहां मामा के साथ रहते हुए उनके ऐश्वर्य के समान ही जीवन बिताने की इनमें भी इच्छा जगी। एक बार दूध के लिए आग्रह करने पर इनकी मामी ने इन्हें दूध नहीं दिया और भला-बुरा कहा। उससे दुःखित होकर माता से ऐश्वर्यसम्पन्न और दीर्घायु बनने का उपाय पूछा, तब माता ने शिवभक्ति का उपदेश दिया। आप वन में चले गए और शिव की अनन्य भक्ति करके परम आयु प्राप्त कर सर्वैश्वर्य सम्पन्न बने। इस स्तोत्र में बालक उपमन्यु का बाल हृदय भक्ति से छलक उठा है। शिव जी से तर्क-वितर्क करते हुए तत्काल कृपा कर दर्शन देने की प्रार्थना की गई है। अपने अवगुणों का स्मरण दिलाते हुए शिव में भी वैसे ही दोषों की उद्भावना करके तादात्म्य-स्थापना का इसमें अपूर्व विवरण प्रस्तुत है। अन्तिम दो पद्यों में इस स्तोत्र के पाठ का फल बतलाया है। यथा—

जयशङ्कर पार्वतीपते, मृड शम्भो शशिखण्ड-मण्डन।
मदनान्तक भक्तवत्सल, प्रियकैलाश दयासुधाम्बुधे ॥१॥
सदुपायकथास्वपण्डितो, हृदये दुःखशरेण खण्डितः।
शशिखण्ड-शिखण्डमण्डनं,शरणं यामि शरण्यमीश्वरम्॥२॥
महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे।
दिननाथ इव स्वतेजसा, हृदयव्योम्नि मनागुदेहि नः ॥३॥
न वयं तव चर्मचक्षुषा, पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः।
कृपयाऽभयदेन चक्षुषा, सकलेनेश विलोकयाशु नः ॥४॥

त्वदनुस्मृतिरेव पावनी, स्तुतियुक्ता नहि वक्तुमीश सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो, ननु कीदृग् सितशर्करान्वितम् ॥५॥
सविषोऽप्यमृतायते भवाञ्छवमुण्डाभरणोऽपि पावनः।
भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥६॥
अपि शूलधरो निरामयो, दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान्।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥७॥
वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा, परिदृष्टः किल कल्पपादपः।
हृदये स्मृत एव धीमते, नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान् ॥८॥
सहसैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः।
अभयं कुरु तावदाशु मे, गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥९॥
सविषैरिव भीमपन्नगैर्विषयैरेभिरलं परीक्षितम्।
अमृतैरिव सम्भ्रमेण मामभिषिञ्चाशु दयावलोकनैः ॥१०॥
मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां, गमिता स्वाभिमतार्थदर्शिनः।
करुणाकर येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य चक्षुषा ॥११॥
प्रणमाम्यथ यामि चापरं, शरणं कं कृपणाभयप्रदम्।
विरहीव विभो प्रियामयं, परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥१२॥
बहवो भवताऽनुकम्पिताः, किमितीशान न माऽनुकम्पसे।
दधता किमु मन्दराचलं, परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥१३॥
अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे, किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते।
उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं, विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥१४॥
क्व दृशं विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः।
क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मामयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते ॥१५॥
विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा।
किमु रोदिमि रारटीमि किं, कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥१६॥
शिव सर्वग शर्व शर्मद, प्रणतो देव दयां कुरुष्व मे।
नम ईश्वरनाथ दिक्पते, पुनरेवेश नमो नमोऽस्तु ते ॥१७॥
शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका।
शरणं पुनरेव तावुभौ, शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥१८॥
उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं, जपतः शम्भुसमीपवर्तिनः!
अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः, परमायुः प्रददाति शङ्करः ॥१९॥

उपमन्युकृत स्तवोत्तमं, प्रजपेद् यस्तु शिवस्य सन्निधौ।
शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात्, सह तेनैव शिवेन मोदते ॥२०॥

—×—

सहस्रनाम स्तोत्र एवं उनकी पाठ-प्रक्रिया

● सहस्रनाम : परम्परा और प्रकार

संस्कृत स्तुति-साहित्य में 'सहस्रनाम'-स्तोत्रों की परम्परा अति-प्राचीन काल से चली आ रही है। उपासना के क्षेत्र में जिस प्रकार मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, पूजा, स्तोत्र आदि एक-दूसरे के पूरक और अंग माने गए हैं, उसी प्रकार 'सहस्रनाम' भी एक पूरक अंग कहा गया है। प्रत्येक देवता की उपासना में जिन पांच अंगों का निर्देश तन्त्रों में किया गया है उनमें भी सहस्रनाम की एक अंग के रूप में गणना की गई है ! यथा—

गीता सहस्रनामानि स्तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पञ्चैतत् पञ्चाङ्गं प्रोच्यते बुधैः ॥

इन्हीं सब दृष्टियों से सभी धार्मिक सम्प्रदायों में अपने-अपने इष्ट-देवों की स्तुति में सहस्रनामात्मक स्तोत्र बने हुए होते हैं।

कोई भी भक्त जब अपने इष्टदेव के गुणों का आख्यान करना चाहता है तो उसके सामने नाम, कर्म, गुणादि का एक विशाल स्रोत छलकता हुआ दिखाई देता है। मानव सान्त है प्रभु अनन्त है। अनन्त के नाम, कर्म, गुणादि भी अनन्त हैं। इनमें से वह अपने लिए किन को चुने और किन को छोड़ दे ? यह प्रश्न उपस्थित होता है। महाभारत में युधिष्ठिर ने अपनी ऐसी ही किंकर्तव्य-विमूढावस्था में भीष्म से पूछा था—

किमेकं दैवतं लोके किं वाऽप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥२४॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः। इत्यादि।[1]

---

१. 'भुशुण्डीरामायण' इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इसमें रामायण के सभी प्रमुख पात्रों के 'सहस्रनाम स्तोत्र' दर्शनीय हैं।

और इन पांचों प्रश्नों का उत्तर देते हुए भीष्म ने कहा था कि—

स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः । इत्यादि ।

इस प्रकार अन्यान्य भगवत्प्राप्ति के उपायों में सहस्रनाम-स्मरण भी महत्त्वपूर्ण है। वहीं आगे **'विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम्'** इत्यादि कहकर सहस्रनाम-स्मरण से प्राप्य अनेक फलों का और भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

वेदो में **'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।'** इत्यादि मन्त्र से सहस्र के उपलक्षण से अनन्त शीर्षादि का संकेत स्पष्ट ही है। तथा रुद्राष्टाध्यायी में शिव की उपासना हेतु निर्दिष्ट 'शतरुद्रिय' के मन्त्र भी इसके सूचक हैं। तान्त्रिक उपासना में प्रातः, मध्याह्न, सायं, तुरीया और भासारूप जो पाञ्चकालिक साधना होती है उसमें भासाकाल में प्रत्येक देव का ध्यान विराड्रूपात्मक होता है जिसमें सहस्र-अनन्त का संकेत स्पष्ट है। यौगिक दृष्टि से शारीरिक चक्रों में सहस्रार में सहस्रदल की कल्पना और प्रत्येक दल में मातृका के वीस आवर्तनों में प्रत्येक वर्ण की स्थापना भी 'सहस्र' की संकेतिका है।

सूर्य को सहस्र किरणोंवाला, इन्द्र को हजार नेत्रोंवाला, शेषनाग को हजार फणोंवाला, भगवती को हजार भुजाओंवाली, गरुड़, शरभ, नृसिंह आदि देवों को हजार दाढ़ोंवाला, तथा कार्तवीर्यार्जुन और वाण को हजार भुजाओंवाला कहना भी 'सहस्रनाम' की प्रेरणा का स्रोत रहा है।

तन्त्रशास्त्र में 'सहस्रनाम स्तोत्र'

तन्त्र-सम्प्रदाय में शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य आदि सभी देवों के 'सहस्रनाम-स्तोत्र' प्राप्त होते हैं इतना ही नहीं अपितु तन्त्रभेद, ध्यानभेद और कालभेद के आधार पर प्रत्येक के एकाधिक सहस्रनाम[२] भी सुलभ

---

१. ऐसे अनेक सहस्रनाम स्तोत्रों की विशद विवेचना के लिए देखिए हमारे द्वारा रचित एवं शीघ्र प्रकाश्य 'स्तोत्र-शक्ति' में सहस्रनाम सम्बन्धी विचार।

२. वाराणसी से प्रकाशित **'सहस्रनाम-संग्रह'** भी एतदर्थ द्रष्टव्य है।

हैं।[1] इनकी रचना में कैलाशशिखरासीन भगवान् वक्ता के रूप में और भगवती पार्वती जिज्ञासु के रूप में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं तथापि यत्र-तत्र नन्दिकेश्वर[2] एवं अन्य ऋषिवर्ग[3] भी द्रष्टा के रूप में स्मृत हैं।

सहस्रनाम अर्चना और जप के बाद तृतीय क्रम में अथवा पूर्वोक्त दोनों कर्मों के अभाव में उनका पूरक एवम् आवश्यक अंग है। यह दिव्य नामावली, रहस्यनामावली का स्वरूप लेकर व्यक्त हुआ है। इसके निर्माण में स्वयं देव और देवियों ने हाथ बटाया[4] और स्वयं स्तोतव्य देवता ने वरदान द्वारा महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर सर्वकार्यसाधन के लिए इसे उपयोगी बताया है। धीरे-धीरे इन स्तोत्रों में संगृहीत नाम सामान्य नाम न होकर भाष्य और व्याख्यानों के द्वारा मन्त्रमय सिद्ध हुए। विभिन्न काम्य-प्रयोगों के साधन बने और रक्षाकवच के रूप में धारण का मार्ग भी प्रशस्त हो गया।[5] शाक्तसम्प्रदाय में सुप्रसिद्ध 'ललितासहस्रनाम' की फल-श्रुति में तो यहां तक कहा गया है कि—

यस्त्यक्त्वा नामसाहस्रं पापहानिमभीप्सति।
स हि शीतनिवृत्त्यर्थं हिमशैलं निषेवते ॥१५०॥

तथा— कलौ पापैकबहुले धर्मानुष्ठानवर्जिते।
नामानुकीर्तनं मुक्त्वा नृणां नान्यत् परायणम् ॥३०१॥

अर्थात् सहस्रनाम-स्मरण को छोड़कर जो पापहानि चाहता है, वह शीत की निवृत्ति के लिए हिमालय का आश्रय लेता है, ऐसा समझना चाहिए। तथा कलियुग में पाप की अधिकता एवं धर्मानुष्ठान की न्यूनता होने के कारण सहस्रनाम-स्मरण के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं है।

---

१. भैरव के छह प्रकार के सहस्रनाम तथा गोपाल के राधातन्त्र और सम्मोहन तन्त्र-प्रोक्त सहस्रनाम इसके उदाहरण हैं।
२. भवानीसहस्रनाम में नन्दिकेश्वर ने पूछा है।
३. ललितासहस्रनाम के द्रष्टा अगस्त्य ऋषि हैं।
४. ललितासहस्रनाम पद्य २७-२८ में वशिन्यादि वाग्देवी इसकी प्रणेत्री हैं।
५. इन सहस्रनामों को लिखकर भुजा, सिर पताका आदि में धारण किए जाने का भी निर्देश है।

यहीं सहस्रनाम के बारे में अन्यान्य माहात्म्य प्रदर्शित कर लौकिक वचनों की अपेक्षा नामस्मरण की विशेषता तथा उपास्यदेव के अनन्त नामों में से संगृहीत एक हजार नामों के स्मरण की विशिष्टता भी वतलाई है। ऐसे हजार नामों में भी जो रहस्यनाम हों उनका महत्त्व और भी विशिष्ट होता है। उदाहरणार्थ वहां कहा गया है कि—

देवीनाम-सहस्राणि कोटिशः सन्ति कुम्भज।
तेषु मुख्यं दशविधं नामसाहस्रमुच्यते॥
रहस्यनामसाहस्रमिदं शस्तं दशस्वपि॥३०३-४॥

इसके अनुसार करोड़ों सहस्र नामों में दस प्रकार के सहस्रनाम मुख्य हैं और उनमें भी यह रहस्यनामसहस्र प्रमुख है। इत्यादि।[1]

यही स्थिति समस्त उपास्य देवों के नामों की है। इतना ही नहीं ऐसे सहस्रनाम स्तोत्रों का १—पाठात्मक और २—क्रियात्मक दोनों रूपों से प्रयोग होता है। पाठात्मक-प्रयोगों में जपादि कर्म के अन्त में इष्टदेव-प्रीत्यर्थ तथा कर्मजनितदोष परिहारपूर्वक सांगतासिद्ध्यर्थ पाठ किया जाता है। क्रियात्मक प्रयोग में (१) मन्त्रजप के समान ही पूरे स्तोत्र का पाठात्मक जप किया जाता है, (२) प्रत्येक नाम के साथ विभक्ति लगाकर अर्चन होता है, (३) भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि के लिए सृष्टि, स्थिति और संहारात्मक पाठ होते हैं, (४) विभिन्न वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक, मन्त्र अथवा बीजाक्षरों के पल्लव-सम्पुट आदि लगाये जाते हैं, (५) पुरश्चरण द्वारा स्तोत्रसिद्धि करके यथासमय प्रयोग किया जाता है। (६) विभिन्न सामग्रियों से देवताओं के सहस्रार्चन, लक्षार्चन सम्पन्न होते हैं तथा (७) प्रत्येक नाममन्त्र द्वारा ब्राह्मण-भोजन की भी एक विशेष प्रक्रिया होती है।[2]

---

१. ये दस प्रकार के सहस्रनाम 'सौभाग्य-भास्कर' भाष्य में श्रीभास्करराय मखी ने 'गंगाश्यालकावालरासभाः' इस गुप्ताक्षर-पद्धति से व्यक्त करके निम्न पद्य दिया है—

गंगा भवानी गायत्री काली लक्ष्मीः सरस्वती।
राजराजेश्वरी वाला श्यामला ललिता दश॥

२. इस सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए हमारी 'स्तोत्र-शक्ति' पुस्तक द्रष्टव्य है।

अतः पूर्वाचार्यों द्वारा संगृहीत एवं स्वानुभव द्वारा विशिष्टरूपेण भगवत्-कृपा-प्राप्ति के साधनभूत 'सहस्रनाम-स्तोत्र' का स्मरण अत्यावश्यक मानकर हम यहां भगवान् 'महामृत्युञ्जय के सहस्रनाम-स्तोत्र' का पाठ दे रहे हैं। इस सहस्रनाम की पूर्वभूमिका इसके प्रारम्भ में इस प्रकार प्राप्त होती है—

महामृत्युञ्जय-सहस्रनामस्तोत्र-परिचय

कैलाश शिखर पर विराजमान भगवान् भैरव (शिव) से महामृत्युञ्जयस्वरूप से सम्बद्ध सहस्रनाम का लोककल्याण के लिए भगवती भवानी पूछती है और भैरव इसे गुप्त तथा महत्त्वपूर्ण बतलाते हुए स्नेहवश प्रकट करते हैं।

प्रारम्भ में विनियोग ऋष्यादिन्यास करन्यास तथा षडंगन्यास का वर्णन है तथा उसके पश्चात् ध्यान का पद्य दिया है। उस पद्य का भावार्थ इस प्रकार है—

"उगते हुए चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, अमृत एवम् आनन्द के कारणभूत, 'ॐ जूं सः' इस त्र्यक्षरी लघुमृत्युञ्जयमन्त्र के द्वारा समस्त भुवनों की सृष्टि, स्थिति और संहार से उद्‌भूत (कष्टों से) रक्षा करनेवाले श्री ओंकार[1] तथा लृकार[2] के द्वारा विभूषित शरीरधारी, तीन नेत्र तथा दो भुजाओं से युक्त ऐसे स्तुतियोग्य पराक्रमशाली गुणों से परिपूर्ण श्रीमृत्युञ्जयशिव का मैं अपने हृदय-कमल में स्मरण करता हूं।"

तदनन्तर एक सौ चार तथा आधे पद्यों में एक हजार नामों का ग्रथन हुआ है। इन नामों में भगवान् शिव के नाम, कर्म, वैभव, बीजमन्त्र एवं सर्वदेवमय स्वरूप का आख्यान हुआ है। इन नामों में एक ही परमात्मा के विभिन्न लीला-विग्रहों का सोपाधिक एवं निरुपाधिक तथा भेदक[3]

---

१. ओङ्कार रूप कहने का तात्पर्य अ-उ-म् रूप अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव का एक समष्टि रूप कहा गया है।

२. लृकाररूप कहने का तात्पर्य अर्धनारीश्वररूप से है।

३. भेदक नाम-'गोविन्द, चन्द्रशेखर, गजानन, भास्कर तथा उमा' आदि हैं जिनका प्रत्येक का अर्थ भिन्न-भिन्न है।

और अभेदक' सभी प्रकारों के नाम संगृहीत हैं। अन्त में 'फलश्रुति' दी है, जिसमें प्रस्तुत सहस्रनाम की रहस्यमयता, तीनों लोकों में दुर्लभता, साक्षात् अमृतरूपता तथा पाठ करने के फलों का वर्णन है। यहीं इसके अतिरिक्त, अर्धरात्रि में, चौराहे पर, एकलिङ्ग में, मरुदेश, वन, श्मशान तथा दुर्ग में पाठ करने से सिद्धि होने का संकेत दिया है। मंगलवारी अमावस्या, शनिवारी पूर्णिमा, रात्रि में नदी के किनारे तथा दिगम्बर और मुक्तकेश होकर पाठ करने का विशेष फल व्यक्त किया है। इसी प्रकार इस सहस्रनाम का पुरश्चरण करके अन्य प्रयोग भी किए जा सकते हैं। इसका मूल पाठ इस प्रकार है—

श्रीमहामृत्युञ्जय-सहस्रनाम-स्तोत्रम्

● **विनियोगः**

अस्य श्रीमहामृत्युञ्जय-सहस्रनाम-स्तोत्रस्य भैरवऋषिरुष्णिक् छन्दः श्रीमहामृत्युञ्जयरुद्रो देवता ॐ बीजं जूं शक्तिः सः कीलकं मम सर्व-विधरोगादिशमनपूर्वकं दीर्घायुः प्राप्तये पाठे विनियोगः।

● **ऋष्यादिन्यासः**

भैरवऋषये नमः (शिरसि), उष्णिक्छन्दसे नमः (मुखे),
श्रीमहामृत्युञ्जयरुद्रदेवतायै नमः (हृदये), ॐ बीजाय नमः (गुह्ये),
जूं शक्तये नमः (पादयोः), सः कीलकाय नमः (नाभौ)
विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यासाः

ॐ (अंगु० हृदयाय०), जूं (तर्जनी० शिरसे०),
सः (मध्यमा० शिखायै०)
ॐ (अना० कवचाय०), जूं (कनि० नेत्र०), सः (कर० अस्त्राय०)

---

१. अभेदक नाम—'विष्णु, ईश्वर, विनायक, सविता एवं प्रकृति' आदि हैं जिनका अर्थ एक ही समान होता है।

● ध्यानम्

उद्यच्चन्द्र-समानदीप्तिममृतानन्दैकहेतुं शिवं,
ॐ जूं सः भुवनैकसृष्टिप्रलयोद्भूतैकरक्षाकरम्।
श्रीमत्तारदशार्णमण्डिततनुं त्र्यक्षं द्विबाहुं परं,
श्रीमृत्युञ्जयमीडचविक्रमगुणैः पूर्णं हृदब्जे भजे॥

इस प्रकार ध्यान करके 'मानसोपचार-पूजा' करे तथा अर्थानुसंधान एवं भक्तिपूर्वक सहस्रनाम का पाठ करें।

भैरव उवाच—

ॐ जूं सः हौं महादेवो मन्त्रेशो मन्त्रनायकः।
मानी मनोरमाङ्गश्च मनस्वी मानवर्धनः॥१॥
मायाकर्ता मल्लरूपो मल्लमारान्तको मुनिः।
महेश्वरो महामान्यो मन्त्री मन्त्रजनप्रियः॥२॥
मारुतो मरुतां श्रेष्ठो मासिकः पाक्षिकोऽमृतः।
मातङ्गो मात्तचित्तो मत्तचिन्मत्तभावनः॥३॥
मानवेष्टप्रदो मेशो मानकीपति-वल्लभः।
मानकायो मधुस्तेयी मारयुक्तो जितेन्द्रियः॥४॥
जयो विजयदो जेता जयेशो जयवल्लभः।
डामरेशो विरूपाक्षो विश्वभक्तो विभावसुः॥५॥
विश्वेशो विश्वतातश्च विश्वसूर्विश्वनायकः।
विनीतो विनयी वादी वान्तदो वाग्भवो वटुः॥६॥
स्थूलः सूक्ष्मश्चलो लोलो ललज्जिह्वाकरालकः।
वीरध्येयो विरागीणो विलासी लास्यलालसः॥७॥
लोलाक्षो ललधीर्धर्मी धनदो धनदार्चितः।
धनी ध्येयोऽप्यध्येयश्च धर्मो धर्ममयोदयः॥८॥
दयावान् देवजनको देवसेव्यो दयापतिः।
दुर्णिचक्षुर्दरीवासो दम्भी देवदयात्मकः॥९॥
कुरूपः कीर्तिदः कान्तः क्लीबः क्लीबात्मकः कुजः।
बुधो विद्यामयः कामी कामकालान्धकान्तकः॥१०॥

जीवो जीवप्रदः शुक्रः शुद्धः शर्मप्रदोऽनघः।
शनैश्चरो वेगगतिर्वाचालो राहुरव्ययः ॥११॥
केतू राकापतिः कालः सूर्योऽमितपराक्रमः।
चन्द्रो भद्रप्रदो भास्वान् भाग्यदो भर्गरूपभृत् ॥१२॥
कूर्तो धूर्तो वियोगी च संगी गङ्गाधरो गजः।
गजाननप्रियो गीतो ज्ञानी स्नानार्चनः प्रियः ॥१३॥
परमः पीवराङ्गश्च पार्वती-वल्लभो महान्।
परात्मको विराड्वास्यो वानरोऽमितकर्मकृत् ॥१४॥
चिदानन्दी चारुरूपो गारुडो गरुडप्रियः।
नन्दीश्वरो नयो नागो नागालङ्कारमण्डितः ॥१५॥
नागहारो महानागी गोधरो गोपतिस्तपः।
त्रिलोचनस्त्रिलोकेशस्त्रिमूर्तिस्त्रिपुरान्तकः ॥१६॥
त्रिधामयो लोकमयो लोकैकव्यसनापहः।
व्यसनी तोषितः शम्भुस्त्रिधारूपस्त्रिवर्णभाक् ॥१७॥
त्रिज्योतिस्त्रिपुरीनाथस्त्रिधाशान्तिस्त्रिधा गतिः।
त्रिधा गुणी विश्वकर्ता विश्वभर्ता त्रिपूरुषः ॥१८॥
उमेशो वासुकिर्वीरो वैनतेयो विचारकृत्।
विवेकाक्षो विशालाक्षो विधिर्विधिरनुत्तमः ॥१९॥
विद्यानिधिः सरोजाक्षो निःस्मरः स्मरशासनः।
स्मृतिदः स्मृतिमान् स्मार्तो ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥२०॥
ब्राह्मी व्रती ब्रह्मचारी चतुरश्चतुराननः।
चलाचलोऽचलगतिर्वेगी वीराधिपोऽपरः ॥२१॥
सर्ववासः सर्वगतिः सर्वमान्यः सनातनः।
सर्वव्यापी सर्वरूपः सागरश्च समेश्वरः ॥२२॥
समनेत्रः समद्युतिः समकायः सरोवरः।
सरस्वान् सत्यवाक् सत्यः सत्यरूपः सुधीः सुखी ॥२३॥
स्वराट् सत्यः सत्यमती रुद्रो रुद्रवपुर्वसुः।
वसुमान् वसुधानाथो वसुरूपो वसुप्रदः ॥२४॥
ईशानः सर्वदेवानामीशानः सर्वबोधिनाम्।
ईशोऽवशेषोऽव्ययवी शेषशायी श्रियः पतिः ॥२५॥

इन्द्रश्चन्द्रावतंसी च चराचरजगत्पतिः।
स्थिरः स्थाणुरणुः पीनः पीनवक्षाः परात्परः॥२६॥
पीनरूपो जटाधारी जटाजूटसमाकुलः।
पशुरूपः पशुपतिः पशुज्ञानी पयोनिधिः॥२७॥
वेद्यो वैद्यो वेदमयो विधिज्ञो विधिमान् मृदुः।
शूली शुभङ्करः शोभ्यः शुभकर्ता शचीपतिः॥२८॥
शशाङ्कधवलः स्वामी वज्री शङ्खी गदाधरः।
चतुर्भुजश्चाष्टभुजः सहस्रभुज-मण्डितः॥२९॥
स्रुवहस्तो दीर्घकेशो दीर्घो दम्भविवर्जितः।
देवो महोदधिर्दिव्यो दिव्यकीर्तिर्दिवाकरः॥३०॥
उग्ररूपश्चोग्रपतिरुग्रवक्षास्तपोमयः।
तपस्वी जटिलस्तापी तापहा तापवर्जितः॥३१॥
हरिद्धयो हयपतिर्हयदो हरिमण्डितः।
हरिवाही महौजस्को नित्यो नित्यात्मकोऽनलः॥३२॥
समानी संसृतिस्त्यागी सङ्गी सन्निधिरव्ययः।
विद्याधरो विमानी च वैमानिक-वरप्रदः॥३३॥
वाचस्पति-वमासारो वामाचारी वलन्धरः।
वाग्भवो वासवो वायुर्वासनाबीजमण्डितः॥३४॥
वाग्मी कौलश्रुतिर्दक्षो दक्षयज्ञविनाशनः।
दक्षो दौर्भाग्यहा दैत्यमर्दनो भोगवर्धनः॥३५॥
भोगी रोगहरो योगी हारो हरिविभूषणः।
वहुरूपो वहुमतिर्वङ्कवित्ती विचक्षणः॥३६॥
नृत्तकृच्चित्तसन्तोषी नृत्यगीतविशारदः।
शरदर्णविभूषाढ्यो गलदग्धोऽघनाशनः॥३७॥
लागी नागमयोऽनन्तोऽनन्तरूपः पिनाकभृत्।
नटलो कारकेशानो वरीयान् वै विवर्णभृत्॥३८॥
साङ्कारष्टङ्कहस्तश्च पाशी शार्ङ्गः शशिप्रभः।
सहस्ररूपी समगुः साधूनामभयप्रदः॥३९॥
साधुसेव्यः साधुगतिः सेवाफलप्रदो विभुः।
स्वमहो मध्यमो मत्तो मन्त्रमूर्तिः सुमन्तकः॥४०॥

कीलालीलाकरो लूतो भवबन्धैकमोचनः।
रेचिष्णुर्विच्युतरतोऽमूतनो नूतनो नवः ।।४१।।
न्यग्रोधरूपो भयदो भयहारीतिधारणः।
धरणीधरसेव्यश्च धराधरसुतापतिः ।।४२।।
धराधरोऽन्धकरिपुर्विज्ञानी मोहवर्जितः।
स्थाणुः केशो जटी ग्राम्यो ग्रामारामो रमाप्रियः ।।४३।।
प्रियकृत् प्रियरूपश्च विप्रयोगी प्रतापनः।
प्रभाकरः प्रभादीप्तो मनुमान् मानवेश्वरः ।।४४।।
तीक्ष्णबाहुस्तीक्ष्णकरस्तीक्ष्णांशुस्तीक्ष्णलोचनः।
तीक्ष्णचित्तस्त्रयीरूपस्त्रयीमूर्तिस्त्रयी तनुः ।।४५।।
हविर्भुग् हविषां ज्योतिर्हालाहलो हलीपतिः।
हविष्मल्लोचनो हालामयो हरिणरूपभृत् ।।४६।।
अदिमाअमयो वृक्षो हुताशो हुतभुग् गुणी।
गुणज्ञो गरुडो गानतत्परो विक्रमी गुणी ।।४७।।
क्रमेश्वरः क्रमकरः क्रमिकृत् क्लान्तमानसः।
महातेजा महामारो मोहितो मोहवल्लभः ।।४८।।
मनस्वी त्रिदशो बालो वाल्यापतिरघापहः।
बाल्यो रिपुहरो हार्यो गविर्गविमतो गुणः ।।४९।।
सगुणो वित्तराट् गेयो विरोचनो विभावसुः।
मालामयो माधवश्च विकर्तनोऽविकत्थनः ।।५०।।
मानकृन्मुक्तिदोऽमूल्यः साध्यः शत्रुभयङ्करः।
हिरण्यरेताः शुभगः सतीनाथः सुरापतिः ।।५१।।
मेढ़ो मैनाकभगिनीपतिरुत्तमरूपभृत्।
आदित्यो दितिजेशानो दितिपुत्रः क्षयङ्करः ।।५२।।
वासुदेवो महाभाग्यो विश्वावसुर्वसुप्रियः।
समुद्रोऽमिततेजश्च खगेन्द्रो विशिखी शिखी ।।५३।।
गरुत्मान् वज्रहस्तश्च पौलोमीनाथ ईश्वरः।
यज्ञिपेयो वाजपेयः शतक्रतुः शताननः ।।५४।।
प्रतिष्ठस्तीव्रविस्रम्भी गम्भीरो भाववर्धनः।
मायिष्ठो मधुरालापो मधुमत्तश्च माधवः ।।५५।।

मायात्मा भोगिनां त्राता नाकिनामिष्टदायकः।
नाकेन्द्रो जनको जन्यस्तम्भनो रम्भनाशनः ।।५६।।
ईशान ईश्वर ईशः शर्वरीपति—शेखरः।
लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो वेदाध्यक्षो विचारकः ।।५७।।
भव्योऽनर्घो नरेशानो नरकान्तकसेवितः।
चतुरो भविता भावी विरामो रात्रिवल्लभः ।।५८।।
मङ्गलो धरणीपुत्रो धन्यो बुद्धिविवर्धनः।
जयो जीवेश्वरो जारो जाठरो जह्नुतापनः ।।५९।।
जह्नुकन्याधरः कल्पो वासरो मास एव च।
कर्तुर्ऋभुसुताध्यक्षो विहारो विहगापतिः ।।६०।।
शुक्लाम्बरो नीलकण्ठः शुक्लो भृगुसुतो भगः।
शान्तः शिवप्रदो भव्यो भेदकृच्छान्तकृत्पतिः ।।६१।।
नाथो दान्तो भिक्षुरूपो धन्यश्रेष्ठो विशाम्पतिः।
कुमारः क्रोधनः क्रोधी विरोधी विग्रही रसः ।।६२।।
नीरसः सुरसः सिद्धो वृषणी वृषघातनः।
पञ्चास्यः षण्मुखश्चैव विमुखः सुमुखी प्रियः ।।६३।।
दुर्मुखो दुर्जयो दुःखी सुखी सुखविलासदः।
पात्री पौत्री पवित्रश्च भूतोक्तः पूतनान्तकः ।।६४।।
अक्षरं परमं तत्त्वं बलवान् बलघातनः।
भल्ली मौलिभवाभावो भावाभावविमोचनः ।।६५।।
नारायणो युक्तकेशो दिग्देवो धर्मनायकः।
कारामोक्षप्रदो जेयो महाङ्गः सामगायनः ।।६६।।
उत्सङ्गमो नामकारी चारी स्मरनिषूदनः।
कृष्णः कृष्णाम्बरः स्तुत्यस्तारावर्णस्त्रयाकुलः ।।६७।।
त्रियामा दुर्गतित्राता दुर्गमो दुर्गघातकः।
महानेत्रो महाधाता नानाशस्त्रविचक्षणः ।।६८।।
महामूर्धा महादन्तो महाकर्णो महोरगः।
महाचक्षुर्महानाशो महाग्रीवो दिगालयः ।।६९।।
दिग्वासा दितिजेशानो मुण्डी मुण्डाक्षसूत्रधृत्।
स्मशाननिलयो रागी महाकटिरनूतनः ।।७०।।

पुराणपुरुषः पारम्परमात्मा महाकरः।
महालस्यो महाकेशो महेशो मोहनो विराट् ॥७१॥
महासुखो महाजङ्घो मण्डली कुण्डली नटः।
असपत्न्यः पत्रकरः पत्रहस्तश्च पाटवः ॥७२॥
लालसः सालसः सालः कल्पवृक्षश्च कल्पितः।
कल्पहा कल्पनाहारी महाकेतुः कठोरकः ॥७३॥
अनलः पवनः पाठः पीठस्थः पीठरूपकः।
पाठीनः कुलसी पीनो मेरुधामा महागुणी ॥७४॥
महातूणीरसंयुक्तो देवदानवदर्पहा।
अथर्वशेषः सौम्यास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥७५॥
यजुः साममुखो गुह्यो यजुर्वेदविचक्षणः।
याज्ञिको यज्ञरूपश्च यज्ञो वै धरणीपतिः ॥७६॥
जङ्गमी भङ्गदी भासा दक्षाभिगमदर्शनः।
अगम्यः सुगमः खर्वः खेटी खेटाननो नयः ॥७७॥
अमोघार्थः सिन्धुपतिः सैन्धवः सानुमध्यगः।
विकालज्ञः सगणकः पुष्करस्थः परोपकृत् ॥७८॥
उपकर्ताऽपकर्ता च घृणी रणभयप्रदः।
धर्मा चर्माम्बरश्चारूरूपश्चारुविभूषणः ॥७९॥
नक्तञ्चरः कायवशी वशी वशिवशो वशः।
वश्या वश्यकरो भस्मशायी भस्मविलेपनः ॥८०॥
भस्माङ्गी मलिनाङ्गश्च मालामण्डितमूर्धजः।
गणकार्यः कुलाचारः सर्वाचारः सखा समः ॥८१॥
मकरो गोत्रभिद् गोप्ता भीमरूपो भयानकः।
अरुणश्चैकवित्तश्च त्रिशङ्कुः शङ्कुधारणः ॥८२॥
आश्रमी ब्राह्मणो वज्री क्षत्रियः कार्यहेतुकः।
वैश्यः शूद्रः कपोतस्थस्त्वरुष्टोऽथ रुषाकुलः ॥८३॥
रोगी रोगापहा शूरः कपिलः कपिनायकः।
पिनाकी चाष्टमूर्तिश्च क्षितिमान् धृतिमांस्तथा ॥८४॥
जलमूर्तिर्वायुमूर्तिर्गताशः सोममूर्तिमान्।
सूर्यदेवो यजमान आकाशः परमेश्वरः ॥८५॥

भवहा भवमूर्तिश्च भूतात्मा भूतभावनः।
भवः शर्वस्तथा रुद्रः पशुनाथश्च शङ्करः ॥८६॥
गिरिजो गिरिजानाथो गिरीन्द्रश्च महेश्वरः।
भीम ईशान भीतिज्ञः खण्डपश्चण्डविक्रमः ॥८७॥
खण्डभृत् खण्डपरशुः कृत्तिवासा वृषापहः।
कङ्कालः कलनाकारः श्रीकण्ठो नीललोहितः ॥८८॥
गुणीश्वरो गुणी नन्दी धर्मराजो दुरन्तकः।
भृङ्गरीटी रसासारी दयालू रूपमण्डितः ॥८९॥
अमृतः कालरुद्रश्च कालाग्निः शशिशेखरः।
त्रिपुरान्तक ईशानस्त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रकः ॥९०॥
कालहृत् केवलात्मा च ऋग्यजुःसामवेदवान्।
ईशानः सर्वभूतानामीश्वरः सर्वरक्षसाम् ॥९१॥
ब्राह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म ब्रह्मणोऽधिपतिस्तथा।
ब्रह्मा शिवः सदानन्दी सदानन्दः सदाशिवः ॥९२॥
मेषस्वरूपश्चार्वङ्गो गायत्रीरूपधारणः।
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतराय च ॥९३॥
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिणे।
वामदेवस्तथा ज्येष्ठः श्रेष्ठः कालकरालकः ॥९४॥
महाकालो भैरवेशो वेशा कलविकारणः।
बलविकारणो बालो बलप्रमथनस्तथा ॥९५॥
सर्वभूतादिदमनो देवदेवो मनोन्मनः।
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ॥९६॥
भवे भवेनातिभवे भवस्व मां भवोद्भवः।
भवनो भावनो भाव्यो बलकारी परःपदम् ॥९७॥
परः शिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परात्परः।
परावरः पलाशी च मांसाशी वैष्णवोत्तमः ॥९८॥
ॐ ऐं श्रीं हसौं देवः ॐ ह्रीं हैं भैरवोत्तमः।
ॐ ह्रां नमः शिवायेति मन्त्रो वटुवरायुधः ॥९९॥
ॐ ह्रौं सदाशिवः ॐ ह्रीं आपदुद्धारणो मतः।
ॐ ह्रीं महाकरालास्य ॐ ह्रीं वटुकभैरवः ॥१००॥

भर्गस्त्रियम्बक ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं चन्द्रार्धशेखरः ।
ॐ ह्रीं सं जटिलो धूम्र ॐ ऐं त्रिपुरघातकः ॥१०१॥
ह्रां ह्रीं ह्रं हरिवामाङ्ग ॐ ह्रीं ह्रं ह्रीं त्रिलोचनः ।
ॐ वेदरूपो वेदज्ञ ऋग्यजुःसामरूपवान् ॥१०२॥
रुद्रो घोररवो घोर ॐ क्षं ह्रं ह्रीं अघोरकः ।
ॐ जूं सः पीयूषसक्तोऽमृताध्यक्षोऽमृतालसः ॥१०३॥
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥१०४॥
ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ जूं सः मृत्युञ्जयः ।
(पातु मां सर्वदेवेशो मृत्युञ्जय-सदाशिवः) ॥१०५॥

—×—

योगामृतवर्षी स्तोत्र

उपासना के क्षेत्र में योग-साधना का भी बहुत अधिक महत्त्व है, यह किसी साधक से छिपा नहीं है। किसी भी साधना में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करने में 'योग-विद्या' का आश्रय लेना अत्यन्त आवश्यक और हितावह है। प्रस्तुत पुस्तक का कलेवर सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की दृष्टि से कुछ बढ़ गया है, तथापि 'रुद्रयामल-तन्त्र' के अनुसार दो स्तोत्र हम योग-शक्ति की अभिवृद्धि के देने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

इनमें प्रथम स्तोत्र मणिपूर-विभेदक 'रुद्रस्तोत्र' है, जिसमें पाप-निवारण और अमृतप्राप्ति के लिये ३१ नामों की सङ्कलनात्मक स्तुति करने का निर्देश है। कहा गया है कि—

एतत्स्तोत्रं पठित्वा स्तौति यः परमेश्वरम् ।
याति रुद्रकुलस्थानं मणिपूरं विभिद्यते ॥
एतत्स्तोत्रप्रपाठेन तुष्टो भवति शङ्करः ।
खेचरत्वपदं नित्यं ददाति परमेश्वरः ॥

(४७ पटल, २३७-३८)

इस कथन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन नामों का यह प्रभाव है कि इससे मणिपूर-चक्र का भेदन हो जाता है। योगदृष्टि से

शास्त्रों में बतलाया गया है कि शरीरस्थ षट् चक्रों में विभिन्न तत्त्वों का स्थायो निवास है। उनमें मणिपूर-चक्र में अन्यान्य तत्त्वों के साथ अमृत-तत्त्व की विशेष स्थिति है और इस चक्र के अधिपति लाकिनीश मृत्युञ्जय हैं। उनकी कृपा से चक्रभेदन होने पर अमृत-प्राप्ति सहज सम्भव है, अतः इसका पाठ करें।

दूसरा स्तोत्र 'रुद्रमृत्युञ्जय' का है। मणिपूर में ही कुम्भक करके इसका पाठ करने से साधक जीवन्मुक्त बन जाता है। इसमें मृत्युञ्जय शिव की सुख और मोक्ष की प्राप्ति के लिये नमनात्मक स्तुति की गई है। भगवती आनन्दभैरवी ने यह स्तोत्र आनन्दभैरव के आग्रह पर बतलाया है। योगमार्ग द्वारा साधना में आगे बढ़ने तथा रोगमुक्त साधना के लिये यह स्तवन अमोघ उपाय है। अतः इसका नित्य पाठ करना चाहिये। स्तोत्र इस प्रकार है—

रुद्रयामलोक्तं मणिपूर-विभेदकं

रुद्र-स्तोत्रम्

ॐ नमः परमकल्याण नमस्ते विश्वभावन।
नमस्ते पार्वतीनाथ उमाकान्त नमोऽस्तु ते ॥१॥
विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय गुणाय निर्गुणाय च।
धर्माय ज्ञान म-क्षाय नमस्ते सर्वयोगिने ॥२॥
नमस्ते कालरूपाय त्रैलोक्यरक्षणाय च।
गोलोकघातकायैव चण्डेशाय नमोऽस्तु ते ॥३॥
सद्योजाताय देवाय नमस्ते शूलधारिणे।
कालान्ताय च कान्ताय चैतन्याय नमो नमः ॥४॥
कुलात्मकाय कौलाय चन्द्रशेखर ते नमः।
उमानाथ नमस्तुभ्यं योगीन्द्राय नमो नमः ॥५॥
सर्वाय सर्वपूज्याय ध्यानस्थाय गुणात्मने।
पार्वती—प्राणनाथाय नमस्ते परमात्मने ॥६॥

—×—

रुद्रयामलोक्तं रुद्रमृत्युञ्जयस्तवनम्

ॐ भजामि शम्भुं सुखमोक्षहेतुं, रुद्रं महाशक्तिसमाकुलाङ्गम्।
रौद्रात्मकं चारु हिमांशुशेखरं, कालं गणेशं सुमुखाय शङ्करम् ॥१॥
मृत्युञ्जयं जीवनरक्षकं परं, शिवं परब्रह्मशरीरमङ्गलम्।
हिमांशुकोटिच्छविमादधानं, भजामि पद्मद्वयमध्यसंस्थितम् ॥२॥
सर्वात्मकं कामविनाशमूलं, तं चन्द्रचूडं मणिपूरवासिनम्।
चतुर्भुजं ज्ञानसमुद्रयाढ्यं, पाशं मृगाक्षं गुणसूत्रव्याप्तम् ॥३॥
धरामयं तेजसमिन्दुकोटिं, वायुं जलेशं गगनात्मकं परम्।
भजामि रुद्रं कुललाकिनीगतं, सर्वाङ्गयोगं जयदं सुरेश्वरम् ॥४॥
शुक्रं महाभीमनयं पुराणं, प्राणात्मकं व्याधिविनाशमूलम्।
यज्ञात्मकं कामनिवारणं गुरुं, भजामि विश्वेश्वरशङ्करं शिवम् ॥५॥
वेदागमानामतिमूलदेशं, तदुद्भवं भद्रहितं परापरम्।
कालान्तकं ब्रह्मसनातनप्रियं, भजामि शम्भुं गगनादिरूढम् ॥६॥
शिवागमं शब्दमयं विभाकरं, भास्वत्प्रचण्डानलविग्रहं ग्रहम्।
ग्रहस्थितं ज्ञानकरं करालं, भजामि शम्भुं प्रकृतीश्वरं हरम् ॥७॥
छायाकरं योगकरं सुखेन्द्रं, मत्तं महामत्तकुलोत्सवाढ्यम्।
योगेश्वरं योगकलानिधिं विधिं, विधानवक्तारमहं भजामि ॥८॥
हेमाचलालंकृतशुद्ध वेशं, वराभयादाननिदानमूलम्।
भजामि कान्तं वनमालशोभितं, चामूलपद्मामलमालिनं कुलम् ॥९॥
स्वयं पुराणं पुरुषेश्वरं गुरुं, मिथ्याभयाह्लादविभाविनं भजे।
भावप्रियं प्रेमाकलाधरं शिवं, गिरीश्वरं चारुपदारविन्दम् ॥१०॥
ध्यानप्रियं ज्ञानगभीरयोगं, भाग्यास्पदं भाग्यसमं सुलक्षणम्।
शूलायुधं शूलविभूषिताङ्गं, श्रीशङ्करं मोक्षफलक्रियं भजे ॥११॥
नमो नमो रुद्रगणेभ्य एवं, मृत्युञ्जयेभ्यः कुलचञ्चलेभ्यः।
शक्तिप्रियेभ्यो विजयादिभूतये, शिवाय धन्याय नमो नमस्ते ॥१२॥
बाह्यं त्रिशूलं वरसूक्ष्मभावं, विशालनेत्रं तनुमध्यगामिनम्।
महाविपद्दुःखविनाशबीजं, प्रज्ञादयाकान्तिकरं भजामि ॥१३॥
पुरान्तकं पूर्णशरीरिणं गुरुं, स्मरारिमाद्यं निजतर्कमार्गम्।
अनादिदेवं दिवि दोषघातिनं, भजामि पञ्चाक्षरपुण्यसाधनम् ॥१४॥

दिगम्बरं पद्ममुखं करस्थं, स्थितिक्रियायोगनियोजनं भवम्।
भावात्मकं भद्रशरीरिणं शिवं, भजामि पञ्चाननमर्कवर्णम्॥१५॥
मायामयं पङ्कजदामकोमलं, दिग्व्यापिनं दण्डधरं हरेश्वरम्।
त्रिपक्षकं त्र्यक्षरवीजभावं, त्रिपद्ममूलं त्रिगुणं भजामि॥१६॥
विद्याधरं वेदविधानकार्यं, कायागतं नीतिनिनादतोषम्।
नित्यं चतुर्वर्गफलादिमूलं, वेदादिसूत्रं प्रणमामि योगम्॥१७॥
वेदान्तवेद्यं कुलशास्त्रविज्ञं, क्रियामयं योगसुधर्मदानम्।
भक्तेश्वरं भक्तिपरायणं वरं, भक्तं महाबुद्धिकरं भजाम्यहम्॥१८॥
गतागतं गम्यमगम्यभावं, समुल्लसत्कोटिकलावतंसम्।
भावत्मकं भावमयं सुखासुखं, भजामि भर्गं प्रथमारुणप्रभम्॥१९॥
विन्दुस्वरूपं पारवादवादिनं, मध्याह्नसूर्यायुतसन्निभं नवम्।
विभूतिदानं निजदानदानं, दानात्मकं तं प्रणमामि देवम्॥२०॥
कुम्भापहं शत्रुनिकुम्भघातिनं, दैत्यारिमीशं कुलकामिनीशम्।
प्रीत्यान्वितं चिन्त्यमचिन्त्यभावं, प्रभाकराह्लादमहं भजामि॥२१॥
त्रिमूर्तिमूलाय जयाय शम्भवे, हिताय लाकस्य वपुर्धराय।
नमो भयाच्छिन्नविघातिने पते, नमो नमो विश्वशरीरधारिणे॥२२॥
तपःफलाय प्रकृतिग्रहाय, गुणात्मने सिद्धिकराय योगिने।
नमः प्रसिद्धाय दयातुराय, वाञ्छाफलोत्साहविवर्धनाय ते॥२३॥
शिवममरमहान्तं पूर्णयोगाश्रयन्तं, धरणिधरकराब्जैर्वर्धमानं त्रिसर्गम्।
विसममरणघातं मृत्युपूज्यं जनेशं,विधिगणपतिसेव्यं पूजये भावयामि॥२४॥

—×—

मृत्युञ्जय नीराजनम्

जय मत्युञ्जय, जय मृत्युञ्जय, जय हे करूणासिन्धो !
पाहि पाहि मां, त्राहि त्राहि मां, पीडित-जनगण-बन्धो !!
शशि-रवि-वह्निनयन भयहर हे, स्मितमुख सङ्कटहारिन्,
पद्मद्वयमध्य-विराजित सुन्दर, शङ्कर सुखकारिन् ।
मुद्रा-पाश-मृगाक्ष सूत्रकर, जय भवजलनिधितारिन्,
चन्द्रकला - स्रुत - सुधार-नातततनुवर, हारादिक-धारिन् ।
जय मृत्युञ्जय० ।।१।।

विश्वविमोहन हे सर्वेश्वर, परात्परं त्वां वन्दे,
मनस्त्वदीयं शरणं नीत्वा, मज्जति नित्यानन्दे ।
हर हर शङ्कर दुरितं हरमे, कृपय विभो मयि मन्दे,
राज राज राजाधिराज शिव, हृदये मम निःस्पन्दे ।
जय मृत्युञ्जय० ।।२।।

जय मृत्युञ्जय जहि जहि मृत्युं, रोगानाशु विनाशय,
दीर्घायुष्यं शुंभां सम्पदं, दत्त्वा सुखय सदाशय ।
उररीकुरू नीराजनमेतद्, रूद्र कृतं विशदाशय,
भक्तिरस्तु पदयोरचला मे, ज्ञानं चापि विकाशय ।
जय मृत्युञ्जय० ।।३।।

अपराध-क्षमापन

साधना का मार्ग असिधारा के समान कठिन माना गया है। विधि-विधानों में, आचार-विचार में तथा क्रिया-विशेष और उच्चारणादि में पद-पद पर त्रुटि होना स्वाभाविक है। मानव-मात्र भूलों का पात्र है। कितनी ही सावधानी क्यों न रखी जाए, कहीं न कहीं, कुछ न कुछ भूल हो ही जाती है।

ऐसी भूलों की यदि क्षमा नहीं मांगी जाए तो उसका परिणाम विघ्न-कारक बन जाता है। अतः अपने द्वारा हुई ज्ञात अथवा अज्ञात त्रुटियों के लिये क्षमा-याचना करना अत्यावश्यक है। इसके लिये निम्नलिखित स्तोत्र का अन्त में पाठ करना उत्तम माना गया है—

अपराध-क्षमापन-स्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां,
विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्वथयति नितरां जाठरो जातवेदाः।
यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेवशम्भो ॥१॥
बाल्ये दुःखातिरेकान्मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा,
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति।
नाना रोगादिदुःखाद् रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥२॥
प्रोढ़ोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ,
दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो ज्ञानगर्वाधिरुढं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥३॥
वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदेवाधितापैः,
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम्।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥४॥
नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहनप्रत्यवायाकुलाख्यं,
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गेऽसुरारे।
ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥५॥

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं,
पूजार्थं वा कदाचिद् बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदलानि।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्थं,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥६॥
दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं,
नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः।
धूपैः कर्पूरदीपैर्विविध — रसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥७॥
ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो,
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥८॥

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे,
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये।
लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥९॥
नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो,
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्।
उन्मन्यावस्थया त्वां विगतकलिमलं शङ्करं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव० ॥१०॥
चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे,
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे,
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥११॥
किं वानेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं,
किं वा पुत्रकलत्रमित्र—पशुभिर्देहेन गेहेन किम्।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः,
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ॥१२॥
आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं,
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं,
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना ॥१३॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराद्धम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥१४॥

—×—

पञ्चामृतमयीपूर्ण शास्त्रमार्गोपदेशिनी।
महामृत्युञ्जयस्यैषा साधना सिद्धिदायिनी॥
कृष्णतीर्थाप्तविद्येन **'रुद्रदेवत्रिपाठिना'**।
निर्मिताऽस्त्वमृतेशस्य तुष्टये पुष्टये सताम्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

●●●
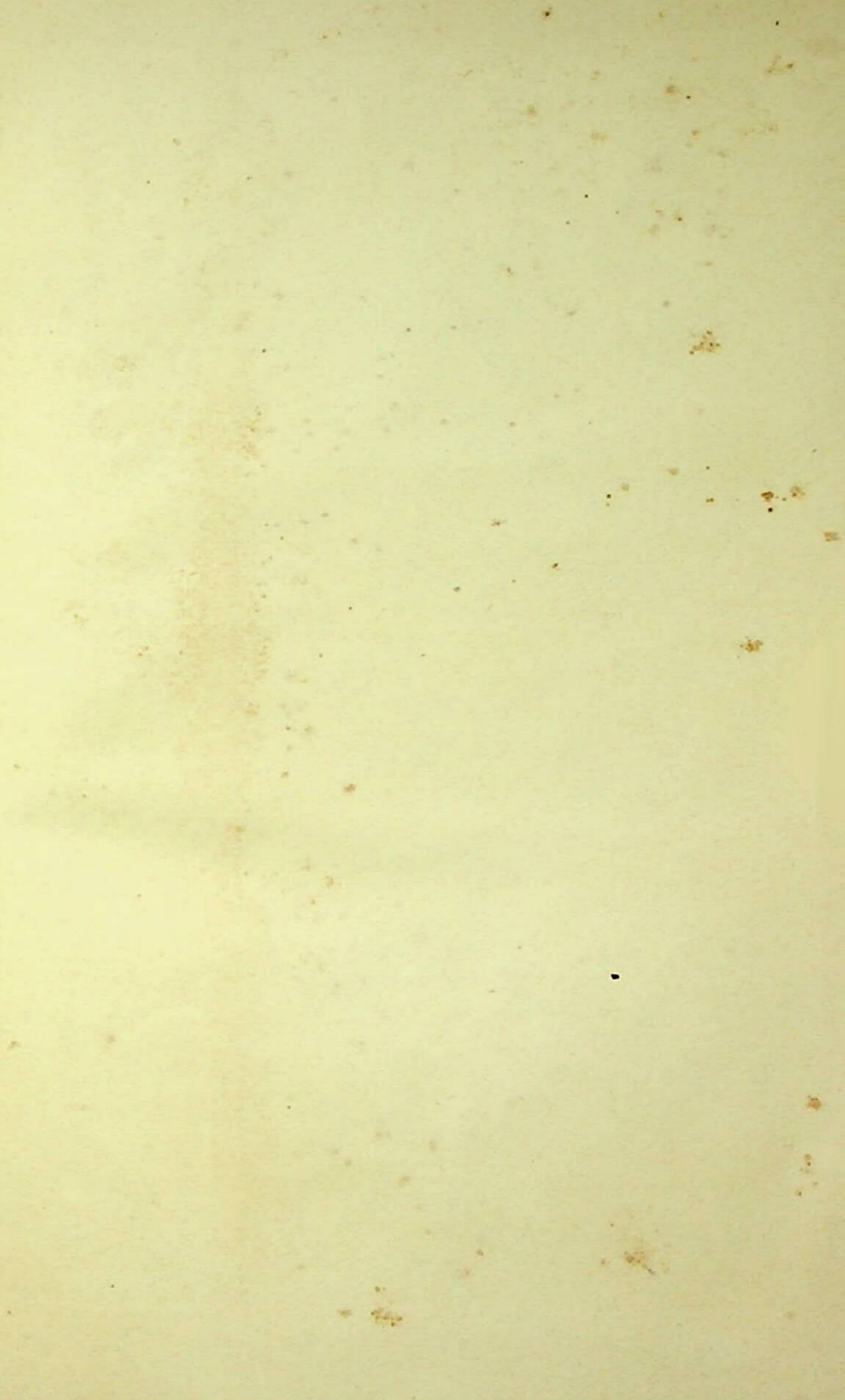
लेखक-परिचय

नाम—डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

जन्म स्थान—मन्दसौर (मध्य प्रदेश)

जन्म तिथि—२३-९-१९२५ ई०

अध्ययन—साहित्याचार्य, सांख्ययोग - दर्शनाचार्य (वाराणसी), काव्य-पुराणतीर्थ (कलकत्ता), हिन्दी विशारद, साहित्य रत्न (प्रयाग), एम०ए० (सं०), एम०ए० (हिन्दी) बी०एड०, पी-एच०डी० एवं डी० लिट् (उज्जैन)।

कार्यस्थल एवं अध्यापन

श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ।

व्याख्याता—शिक्षा शास्त्री (अध्या० ५ वर्ष), तथा अनुसन्धान एवं प्रकाशन विभाग में रीडर एवं अध्यक्ष (सन् १९७२ से)।

लेखन एवं साहित्य सेवा—

डॉ० त्रिपाठी ने मन्दसौर से **'मालव-मयूरः'** नामक संस्कृत मासिक पत्र का १८ वर्ष तक सम्पादन एवं प्रकाशन करते हुए अनेक निबन्ध, लेख कविताएं (संस्कृत एवं हिन्दी में) लिखीं। शोध-प्रबन्ध—"संस्कृत साहित्य में शब्दालङ्कार" प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त प्रायः २५ पुस्तकें साहित्य के क्षेत्र में प्रकाशित हैं।

तन्त्र शास्त्र के प्रकाशन—

स्वयं श्रीविद्या की उपासना में दीक्षित एवं पूर्णाभिषिक्त हैं तथा पर्याप्त समय से तन्त्रशास्त्र पर लिख रहे हैं। १. मन्त्र शक्ति, २. तन्त्र शक्ति, ३-४. यन्त्र शक्ति (१-२ भाग), ५. महामृत्युञ्जय, ६. माहेश्वर-तन्त्र, ७. श्री बटुकभैरव नामावली-सटीक, ८. श्री बटुकभैरव नित्यकर्मविधि, ९. श्री बटुकभैरव साधना, १०. श्री महात्रिपुरसुन्दरी खड्गमाला, ११. गायत्रीरहस्यदर्पण आदि ग्रन्थ इस क्षेत्र में प्रकाशित हैं तथा और भी कई, १२. रुद्रयामल तंत्र १३. योगशक्ति १४. स्तोत्रशक्ति आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले हैं।